ओ३म्

# प्रकाशक का वक्तव्य

'आर्यसाहित्यमण्डल लिमिटेड' का उद्घाटन श्री० १०८ श्री नारायण स्वामीजी के पवित्र करकमलों से हुआ था। मण्डल को यह भी सौभाग्य प्राप्त हुआ कि उसके लिमिटेड होजाने पर उक्त स्वामीजी की लेखनी से लिखे आर्य-कर्तव्यों के प्रदर्शक 'कर्तव्य-दर्पण' ग्रन्थ से ही ग्रन्थप्रकाशन का 'श्रीगणेश' हुआ। श्री १०८ श्री नारायण स्वामीजी की मण्डल पर सदा ही महानुभावतापूर्ण कृपा रही है, जिसके लिये मण्डल श्रीमानों का सदा आभारी रहेगा।

मण्डल के लिये बड़े भारी सौभाग्य की बात है कि श्रद्धेय परमपूज्य श्री नारायण स्वामीजी के परमपावन करकमलों की छाया में मण्डल का विकास, पल्लवोद्भेद

संवर्धन और परिपोषण होना प्रारम्भ हुआ है। परमेश्वर से हमारी सदा ही यह प्रार्थना है कि मण्डल पर इसी कोटि के परम कृपालु, परोपकारी, त्यागी, धर्मानुरागी, ज्ञानानुभावी निष्ठ महानुभावों की कृपा बनी रहे और सहस्रों विघ्नबाधाओं की प्रबल आंधियों के आने पर भी उनके सत्य आशीर्वादों से बलवान्, यशस्वी, चिरायु होने वाले मण्डलरूप तरुवर की निरन्तर वृद्धि हो और इससे उत्पन्न ज्ञानरस से भरे पूरे वैदिकधर्म के प्रकाश सें परिपक्व सहज मधुर ग्रन्थ फलों का आस्वादन करके ज्ञान, धर्म और शान्ति के पिपासु आर्यजन अपने हृदयों में परमानन्द का अनुभव करेंगे। आशा है कि प्रत्येक स्त्री, पुरुष 'कर्त्तव्य-दर्पण' में अपने जीवन की नित्य प्रति दिन छाया देखकर उसको सुधारेंगे और आदर्श निर्मल, निष्कलंक, स्वच्छ होने का यत्न करेंगे।

विनीत—

**प्रकाशक**

# प्राक्कथन

श्रीयुत म० वेदमित्र जिज्ञासु रईस तीतरों, ज़ि० सहारनपुर, जो प्रतिवर्ष नियम से लगभग ६ मास मेरी कुटी के समीप रामगढ़ ( नैनीताल ) में रहा करते हैं, उनकी ३ कन्याओं में से मझली कन्या कृष्णाकुमारी थी। यह कन्या अत्यन्त अल्पायु ही से अपनी सुशिक्षिता और तपस्विनी माता ( श्रीमती सुमित्रा देवी ) और त्याग और ईश्वरभक्ति में रत अपने पिता ( श्रीयुत वेदमित्र जिज्ञासु ) की गोद में परवरिश पाने के कारण बड़ी समझदार थी, बड़े प्रेम से ईश्वरभक्ति के वेदमन्त्र पढ़ने, भजन गाने और किसी को कुछ देदेने से बड़ी प्रसन्न हुआ करती थी। उसने ६ वर्ष की आयु ही में अपने ही आग्रह से अपना यज्ञोपवीत और वेदारम्भ

संस्कार कराया था, सात वर्ष की वह पूरी भी नहीं होने पाई थी कि-दुर्भाग्य से बीमार हो गई और सब कुछ करने पर भी रोग से मुक्त नहीं हो सकी। श्रावण कृष्णा १० संवत् १९८६ वि० तदनुसार ३१ जुलाई १९२९ ई० को भुवाली में, जहां योग्य डाक्टरों के द्वारा उसकी चिकित्सा होरही थी, असमय और अल्पायु ही में काल के गाल में समा गई। उसका जन्म कार्तिक शुक्ला सप्तमी १९७९ वै० तदनुसार २८ अक्टूबर १९२२ ई० को हुआ था, इसलिये मृत्यु के समय उसका सातवां वर्ष पूरा भी नहीं होने पाया था, यह स्वाभाविक था कि माता पिता को ऐसी असाधारण कन्या की मृत्यु का अधिक दुःख होता, सभी दुःखी हुये।

इस दुःख के शान्त होने और स्वर्गगामिनी पुत्री की यादगार स्थिति के साथ बनी रहने के

उद्देश्य से उसके माता और पिता ने विरक्तार्याश्रम ज्वालापुर* में यज्ञशाला और पुस्तकालय के सुन्दर और विशाल भवन बनवाये हैं उसी की यादगार में उन्होंने यह भी निश्चय किया था कि एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित की जावे जो प्रतिदिन आर्य परिवारों में काम आने के योग्य हो और पुस्तक में वे वेद-मन्त्र और भजन भी शामिल कर दिये जावें, जिन्हें कृष्णकुमारी बड़े प्रेम से गाया करती थी तदनुसार यह पुस्तक प्रकाशित की जाती है।

ऐसी पुस्तक के लिये स्वाभाविक था कि उसका मसाला वेद, आर्ष तथा अन्य ग्रन्थों से संग्रह किया जाता, तदनुसार संग्रह किया

* हरिद्वार के निकट ज्वालापुर में आर्य वानप्रस्थियों और संन्यासियों के लिये कई वर्ष से एक आश्रम खुला है और अच्छी खासी उन्नत दशा में है उसी आश्रम का नाम विरक्तार्य-आश्रम है।

गया है। इस संग्रह कार्य में पं० देवीदत्तजी त्रिपाठी नैनीताल निवासी ने, जो इस कन्या के अध्यापक भी थे, बड़ा परिश्रम किया है। इस प्रकार की अनेक पुस्तकें काशी, लाहौर और गयादि स्थानों से प्रकाशित भी हो चुकी हैं, परन्तु पाठक देखेंगे कि इस पुस्तक में मनुष्य-जीवन को उन्नत करने के लिये अनेक व्रत और ब्रह्मचर्य के साधन आदि ऐसे दिये गये हैं जिनसे लाभ उठा कर प्रत्येक नरनारी अपने को चरित्ररूप सम्पत्ति से सम्पन्न बना सकते हैं।

पुस्तक वास्तव में प्रत्येक के लिये ही बड़े काम की है और इसीलिये यह आशा की जाती है कि इससे अधिक से अधिक लाभ उठाया जायगा।

नारायण-आश्रम, रामगढ़<br>
श्रावण शुक्ला १<br>
संवत् १९८७ वि०

नारायण स्वामी.

ओ३म्
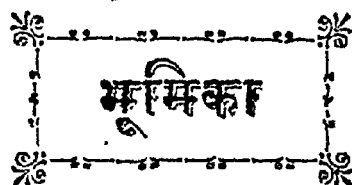
पाठकवर्ग ! मेरी इच्छा थी कि अपनी होनहार पुत्री कृष्णाकुमारी देवी जिसका अल्प आयु में ही दुर्भाग्य से देहान्त हो गया, जिसके गुणों का स्मरण आकर मुझे अब भी क्लेश पहुंचता रहता है, उसकी पुण्य-स्मृति में कोई ऐसी उपयोगी, भक्ति, वैराग्य के भजन, वेदमन्त्र और जीवन को सार्थक बनाने वाले उपदेशों से भरी हुई पुस्तक संग्रह होकर ईश्वर-प्रेमियों के लिये लाभदायक वस्तु बन जावे। मेरा सौभाग्य है कि

पूज्यपाद श्री १०८ महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज ने मेरी इस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर अपने बहुमूल्य समय को इस कार्य्य के लिये प्रदान कर मुझे अनुगृहीत किया है, उन की इस कृपा तथा महान् उपकार का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं। ईश्वर कृपा करे कि जिस भाव से प्रेरित होकर मैंने इस कार्य्य का विचार किया है भक्त लोग इसे उसी भाव से अपनावेंगे तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा।

वेदमित्र जिज्ञासु—
श्री नारायण-आश्रम, रामगढ़
( नैनीताल )

# विषय-सूची

# कर्त्तव्य-दर्पण

[ १ ]

## दिनचर्या

प्रातःकाल ४ बजे से ४॥ बजे तक वेद-मंत्र का पाठ
तथा व्रत ग्रहण

४॥ से ५॥ शौच, स्नान, सन्ध्या

५॥ से ६॥ व्यायाम तथा वायुसेवन

६॥ से ७ अग्निहोत्र और भजन गान

नोट—यह कार्य्य समस्त परिवार के स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध करें।

७ से ८ स्वाध्याय

८ से १० अन्य आवश्यक कार्य्य

१० से ११ भोजन और मनोरंजन

११ से ५ नियमित व्यवसाय-सम्बन्धी कार्य्य

५ से ६ वायुसेवन

६ से ७ अग्निहोत्र और सन्ध्या

७ से ६ आवश्यक कार्य्य, परिवार के लोगों को धार्मिक शिक्षा तथा मंत्रपाठ और व्रत ग्रहण

६ से ४ बजे तक शयन

नोट—देश, काल और अपने स्वास्थ्य की अवस्थानुसार इस दिनचर्या में उचित फेरफार किया जा सकता है।

[ २ ]

## प्रातःकाल करने योग्य व्रत

मनुष्य जब प्रातःकाल ४ बजे के लगभग जगे तब शान्ति के साथ अपने बिस्तर ही पर बैठ कर प्रसन्नचित्त हो प्रकरण [३] में लिखे हुए मंत्रों का उच्चारण उच्च स्वर से करे और उसके बाद ईश्वर को साक्षी समझता हुआ मन ही मन में परन्तु अच्छी तरह से समझता और ध्यान देता हुआ निम्न प्रतिज्ञा करे:-

व्रतपति प्रभो! हम व्रत लेते हैं कि आज समस्त दिन में कोई कुत्सित व्यवहार, जिससे अपनी या अन्यों की हानि हो, नहीं करेंगे प्रत्येक काम धर्माधर्म का विचार कर इस प्रकार करेंगे। जिससे वह हमारे और अन्यों के लिये भी कल्याणकारक हो, यथासंभव ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन करेंगे और धर्मपूर्वक धन का संचय करेंगे, अपने परिवार के छोटे बड़े एक एक व्यक्ति तथा अन्यों से भी ऐसा व्यवहार करेंगे जिससे वह प्रेम, प्रीति और संसार में सुख की मात्रा बढ़ानेवाला हो।

[ ३ ]

## प्रातःकाल पाठ के योग्य मन्त्र

ओं प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

ऋ० मं० ७। सू० ४१। मं० १

अर्थ—( प्रातः ) प्रभात समय में ( अग्निम् ) स्वप्रकाशस्वरूप ( प्रातः, इन्द्रम् ) परमैश्वर्य्य के दाता और परमैश्वर्य्ययुक्त ( प्रातः ) ( मित्रावरुणा ) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् ( प्रातः ) ( अश्विना ) सूर्य्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की ( हवामहे ) स्तुति करते हैं और ( प्रातः ) ( भगम् ) भजनीय, सेवनीय, ऐश्वर्य्ययुक्त ( पूषणम् ) पुष्टिकर्त्ता ( ब्रह्मणस्पतिम् ) अपने उपासक वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे ( प्रातः ) ( सोमम् ) अन्तर्यामी प्रेरक ( उत ) और ( रुद्रम् ) पापियों को रुलाने हारे और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की ( हुवेम ) स्तुति प्रार्थना करते हैं।

ओं प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥

ऋ० मं० ७ । सू० ४१ । मं० २ ॥

प्रातः पांच घड़ी रात्रि रहे ( जितम् ) जयशील

(भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य की उत्पत्ति करने हारे और (यः) जो कि सूर्यादि लोकों का (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सब ओर से धारणकर्त्ता (यं, चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जानने हारा (तुरश्चित्) दुष्टों को भी दण्डदाता और (राजा) सब का प्रकाशक है (यं) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवन करता हूं और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सब का (आह) उपदेश करता है, कि तुम जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करने हारा हूं, उस मेरी आज्ञा में चला करो इससे (वयम्) हम उसकी (हुवेम) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

ओं भग प्रणेतर्भग सत्यराधो, भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥

ऋ० मं० ७ । सू० ४१ । मं० ३ ॥

हे ( भग ) भजनीय स्वरूप ! ( प्रणेतः ) सब के उत्पादक सत्याचार में प्रेरक ( भग ) ऐश्वर्यप्रद ( सत्यराधः ) सत्य धन के देने हारे ( भग ) धर्मात्माओं के ऐश्वर्यदाता ( नः ) हमको ( इदम् ) इस ( धियम् ) प्रज्ञा को ( ददत् ) दीजिये और उनके दान पर हमारी ( उदव ) रक्षा कीजिए। हे ( भग ) आप ( गोभिः ) गाय आदि ( अश्वैः ) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्य श्री को ( नः ) हमारे लिए ( प्रजनय ) प्रकट कीजिये। हे ( भग ) आपकी कृपा से हम लोग ( नृभिः ) उत्तम मनुष्यों से ( नृवन्तः ) बहुत वीर मनुष्यों वाले ( प्र स्याम ) अच्छे प्रकार होवें ॥ ३ ॥

ओं उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य, वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥

ऋ० मं० ७ । सू० ४१ । मं० ४ ॥

हे भगवन् ! आपकी कृपा ( उत ) और अपने

पुरुषार्थ से हम लोग ( इदानीम् ) इसी समय ( प्रपित्वे ) प्रकर्षता व उत्तमता की प्राप्ति में ( उत ) और ( अह्नाम् ) इन दिनों के मध्य में ( भगवन्तः ) ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् ( स्याम ) होवें ( उत ) और हे ( भगवन् ) परमपूजित असंख्य धन देने हारे ( सूर्यस्य ) सूर्यलोक के ( उदिता ) उदय में ( देवानां ) पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की ( सुमतौ ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा ( उत ) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें ॥४॥

ओं भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥ ५ ॥

ऋ० मं० ७ । सू० ४१ । मं० ५ ॥

हे ( भग ) सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर जिससे ( तम् ) उस ( त्वा ) आप की (सर्वः) सब सज्जन ( इत् जोहवीति ) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप हे ( भग ) ऐश्वर्यप्रद ( इह ) संसार और

( नः ) हमारे गृहाश्रम में ( पुरः एता ) अग्रगामी, आगे २ सत्य कर्मों में बढ़ाने हारे ( भव ) हूजिए और जिसमे ( भगः एव ) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे ( भगवान् ) पूजनीय देव ( अस्तु ) हूजिए, ( तेन ) इसी हेतु से ( देवः वयम् ) हम विद्वान् लोग ( भगवन्तः) सकलैश्वर्य सम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन, मन, धन से प्रवृत्त ( स्याम ) होवें ॥ ५ ॥

## भजन

भोर भयो पत्ती बन बोले, उठो जन प्रभुगुण गाओ रे।
लखो प्रभात प्रकृति की शोभा, बारबार हर्षाओ रे ॥
प्रभु की दया सुमरि निज मनमें, सरल स्वभाव उपजाओ रे।
हो कृतज्ञ प्रेम में उनके, नैनन नीर बहाओ रे ॥
ब्रह्मरूप सागर में मन को, बारम्बार डुबाओ रे।
निर्मल शीतल लहरें लेले, आत्म-ताप बुझाओ रे ॥

## भजन भैरवी

मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥ टेक ॥

प्रातःकाल उठ शुद्ध वदन ह्वै चित एकाग्र करो रे ।
ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप में, नित तू ध्यान धरो रे ॥
मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥ १ ॥

करि संध्या जप महामंत्र को, बुद्धि विमल करो रे ।
यथाशक्ति उपकार नित्य कर, जीवन सुफल करो रे ॥
मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥ २ ॥

सब जीवन पर कृपादृष्टि कर, हिंसा त्याग करो रे ।
माँस, मीन, मद, मुद्रा, मैथुन, पञ्च मकार तजो रे ॥
मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥ ३ ॥

किशोर बहुत दिन सोय वितायो, अब कछु चेत करो रे ।
काल कराल निकट आन पहुंच्यो, अब तो तनिक डरो रे ॥
मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥ ४ ॥

[ ४ क ]

## ब्रह्म-यज्ञ (संध्या) और उसका रहस्य

मुख्य सन्ध्या के प्रारम्भ करने से पहले ३ प्राणायाम करने चाहियें और गायत्री मन्त्र का पाठ करते हुए चोटी में गांठ दे लेनी चाहिये। पहली क्रिया से चित्त की स्थिति सन्ध्या करने के अनुकूल होती है और दूसरी क्रिया, बिखरे हुए बाल सन्ध्या में बाधक न हों, इसलिये की जाती है।

## सन्ध्या का उद्देश्य

### आचमन मन्त्र

इस मन्त्र को पढ़कर तीन बार आचमन करना चाहिये।

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥

यजुर्वेद अध्याय ३६। मन्त्र १२

शब्दार्थ—( ओम् ) ईश्वर का मुख्य नाम। ( शम् ) कल्याणकारी। ( नः ) हम पर। ( देवीः )

सर्वप्रकाशक। ( अभिष्टये ) इच्छित फल के लिये। ( आपः ) सर्वव्यापक। ( भवन्तु ) हों। ( पीतये ) आनन्द प्राप्ति के लिये। ( शंयोः ) सुख की। ( अभिस्रवन्तु ) वर्षा करें। ( नः ) हम पर।

भावार्थ—सर्वप्रकाशक और सर्वव्यापक ईश्वर इच्छित फल और आनन्द प्राप्ति के लिये हमारे लिये कल्याणकारी हों और हम पर सुख की वृष्टि करें।

## पहला कर्त्तव्य

### हमको अपने साथ क्या करना चाहिये ?

### इन्द्रियस्पर्श मन्त्र

इस मन्त्र से इन्द्रिय-स्पर्श करना चाहिये।

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः। ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! मेरी वाणी, प्राण, आँख, कान, नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर, बाहु और हाथ के ऊपर और नीचे के भाग (अर्थात्) सभी इन्द्रियां बलवान् और यशवाले हों।

## मार्जन मन्त्र

इस मन्त्र से प्रत्येक इन्द्रिय पर जल सिञ्चन करना चाहिये।

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

शब्दार्थ—(ओम्) ईश्वर का मुख्य नाम। (भूः) सत्यस्वरूप। (पुनातु) पवित्र करे। (शिरसि) शिर को। (भुवः) चित्तस्वरूप। (नेत्रयोः) दोनों नेत्रों को। (स्वः) आनन्द-स्वरूप। (कण्ठे) कण्ठ को (महः) महान्।

( हृदये ) हृदय को। ( जनः ) उत्पादक। ( नाभ्याम् ) नाभि को। ( तपः ) तेजस्वी। ( पादयोः ) दोनों पैरों को ( सत्यम् ) अविनाशी। ( पुनः ) फिर। ( खम् ) व्यापक। ( ब्रह्म ) महान् ईश्वर। ( सर्वत्र ) समस्त शरीर को।

भावार्थ—हे ईश्वर! आप मेरे शिर, नेत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, पैर अर्थात् समस्त शरीर को पवित्र करें।

## प्राणायाम मन्त्र

इस मन्त्र से तीन वार प्राणायाम करना चाहिये।

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्। ( अर्थ पूर्ववत् )

प्राणायाम विधि—( १ ) पद्मासन या किसी अन्य आसन से, जिससे सुखपूर्वक उस समय तक विना आसन बदले बैठ सको, जितनी देर प्राणायाम करना इष्ट हो, इस प्रकार बैठ जाओ कि छाती, गला और मस्तक तीनों एक सीध में रहें।

( २ ) नाक से धीरे धीरे श्वास बाहर निकालो ( रेचक ) और उसे बाहर ही रोक दो ( बाह्यकुम्भक )

( ३ ) जब और अधिक देर बिना श्वास लिये न रह सको, तो धीरे २ श्वास भीतर खींचो ( पूरक ) और उसे भीतर ही रोक दो ( आभ्यन्तरकुम्भक )।

( ४ ) जब और अधिक समय कुम्भक ( भीतर श्वास रोक रखना ) न कर सको, तो फिर सं० (२) के अनुसार रेचक आदि करो।

( ५ ) प्रत्येक क्रिया के साथ प्राणायाम मन्त्र का मानसिक जप करते जाओ अर्थात् बिना जिह्वा से काम लिये मन में अर्थ का चिन्तन करते रहो।

## अघमर्षण मन्त्राः

इन मन्त्रों का अर्थ के साथ चिन्तन करते हुए ईश्वर की महत्ता का अनुभव करो कि किस प्रकार उसने इस महान् जगत् को रचा, जिससे हृदय में उसके प्रति श्रद्धा और विश्वास हो, इसी उत्पन्न श्रद्धा से मनुष्य पाप करने से बच जाया करता है।

ओम् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ ( ऋग्वेद १० । १९० । १ ) ओम् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥ ( ऋग्वेद १० । १९० । २ ) ओम् सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथ्वीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥

ऋग्वेद १० । १९० । ३ ॥

शब्दार्थ—( ऋतम् ) ईश्वरीयज्ञान वेद अर्थात् वह सत्य जो तीनों काल में एक जैसा रहा करता है। ( च ) और। ( सत्यम् ) प्रकृति। ( अभीद्धात् ) ईश्वर के ज्ञानमय। ( तपसः ) अनन्त सामर्थ्य से। ( अध्यजायत ) प्रकट हुए। ( ततः ) उसी "सामर्थ्य" से। ( रात्रिः ) महाप्रलय=महारात्रि। ( अजायत ) उत्पन्न हुई। ( समुद्रः ) आकाश। ( अर्णवः ) जलों से भरा हुआ।

भावार्थ—ईश्वर के ज्ञानमय अनन्त सामर्थ्य से ईश्वरीय नियम ( वेद ) और प्रकृति प्रकट हुई, उसी सामर्थ्य से महारात्रि ( महाप्रलय ) उत्पन्न हुई और उसी सामर्थ्य से जलों से भरा हुआ आकाश उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥

शब्दार्थ—( अर्णवात् ) जल भरे। ( समुद्रात् ) आकाश के पश्चात्। (संवत्सरः) सन्धिकाल। ( अधि-अजायत ) ऊपर बीता। ( तत्र ) ( विश्वस्य ) समस्त ( मिषतः ) चेतन ( जीव ) मात्र के। ( वशी ) वश में रखने वाले ईश्वर ने। ( अहोरात्राणि ) दिन रातों को। ( विदधत् ) रचा।

भावार्थ—जल भरे हुए आकाश की उत्पत्ति के पीछे सन्धिकाल ( महाप्रलय[1] के बाद का वह

---

नोट—( १ ) महाप्रलय के बाद महत्तत्त्व की उत्पत्ति के बाद स्थूल जल की उत्पत्ति तक जो काल बीतता है वह सूर्य के न होने के कारण दिन मास वर्ष की गणना में नहीं आया करता इसीलिये उसको संधि-

समय जो जगत् की उत्पत्ति के प्रारम्भ से लेकर जब तक सूर्य्य उत्पन्न नहीं होता व्यतीत हुआ करता है ) पूरा हुआ उसके बाद समस्त चेतन जगत् के वश में रखने वाले ईश्वर ने दिन रात उत्पन्न किये ॥ २ ॥

क्योंकि—( धाता ) धारने वाले ईश्वर ने । ( सूर्या-चन्द्रमसौ ) सूर्य्य और चन्द्र को । ( यथापूर्वम् ) पूर्व कल्प के समान । ( अकल्पयत्[1] ) रच लिया था । ( दिवञ्च ) प्रकाशमान और ( पृथ्वीम् ) प्रकाश रहित लोक । ( अथो ) और । ( अन्तरिक्षम् ) अन्तरिक्ष को । ( स्वः ) भी ॥ ३ ॥

काल कहते हैं पहले मन्त्र में आये संवत्सर का अभिप्राय इसी सन्धिकाल से है ।

( १ ) अकल्पयत् क्रिया का अर्थ "रच लिया था" ऐसा करने से अहोरात्रि की उत्पत्ति से पहले सूर्य आदि की उत्पत्ति आ जाती है, क्योंकि बिना सूर्य के दिन रात उत्पन्न नहीं हो सकते इसलिये केवल "रचा" के स्थान में "रच लिया" अर्थ ही सुसंगत जान पड़ता है ।

इस मन्त्र के बाद आचमन मन्त्र पढ़कर तीन बार आचमन करना चाहिये।

## दूसरा कर्तव्य

## हमको अन्यों के साथ क्या करना चाहिये।

### मनसा परिक्रमा

ओं प्राचीदिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिता-दित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ १॥ अथर्ववेद ३। २७। १॥

शब्दार्थ—( प्राचीदिक् ) पूर्व दिशा में। (अग्निः) प्रकाशस्वरूप ईश्वर। ( अधिपतिः ) स्वामी। (असितः) अन्धकार से। ( रक्षिता ) रक्षा करने वाला है। ( आदित्याः ) सूर्य की किरणें। ( इषवः ) बाणरूप हैं। ( तेभ्यो अधिपतिभ्यो नमः ) उस स्वामी के लिये नमस्कार हो। ( रक्षितृभ्यो नमः ) रक्षक के

लिये नमस्कार हो। ( इषुभ्यो नमः ) उन बाणों के लिये आदर हो। ( एभ्यः नमः अस्तु ) इन सब के लिये आदर हो। ( योऽस्मान् द्वेष्टि ) जो हम से द्वेष करता है। ( यं वयं द्विष्मः ) जिससे हम-द्वेष करते हैं। ( तम् ) उस ( द्वेषभाव ) को ( वः ) आपके ( जम्भे दध्मः [१] ) विनाशक शक्ति के सम्मुख रखते हैं।

ओम् दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चि-राजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधि-पतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म-स्तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

अथर्व० ३। २७। २ ॥

शब्दार्थ—( दक्षिणादिक् ) दक्षिणादिशा में।

---

( १ ) "जम्भे दध्मः" का शब्दार्थ है जम्भे-दाढ़ में दध्मः रखते हैं 'जम्भे दध्मः' दाढ़ में रखना यह संस्कृत का महावरा नाश करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ करता है।

( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् ईश्वर । ( अधिपतिः ) स्वामी है। ( तिरश्चि राजी ) टेढ़े चलने वाले ( सर्प आदि ) की पङ्क्ति से । ( रक्षिता ) रक्षा करता है । ( पितरः ) चन्द्रकिरणें[1] । ( इषवः ) बाण तुल्य हैं ।

( शेष पूर्ववत् )

ओम् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥ अथर्व० ३ । २७ । ३ ॥

शब्दार्थ—( प्रतीची दिक् ) पश्चिम दिशा में । ( वरुणः ) श्रेष्ठ ईश्वर । ( अधिपतिः ) स्वामी है । ( पृदाकू ) विषैले प्राणियों से । ( रक्षिता ) रक्षा करने

---

(१) चन्द्र किरणों से विषका नाश होता है, शीतलता विष की नाशक होती है, इसीलिये जल या पदार्थों में रखने जाने पर कम विषैले होते हैं ।

वाला है। ( अन्नम् ) घृत[1] । ( इपवः ) बाण के सदृश है। ( शेप पूर्ववत् )

ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिपवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इपुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ४ ॥ अथर्व० ।-३ । २७ । ४ ॥

शब्दार्थ —( उदीची दिक् ) उत्तर दिशा में। ( सोमः ) शान्तिरूप ईश्वर। ( अधिपतिः ) स्वामी है। ( स्वजः ) स्वयं उत्पन्न ( कीट मच्छर आदि ) से। ( रक्षिता ) रक्षा करता है। ( अशनिः ) बिजली[2] ( इपवः ) बाण तुल्य है। ( शेप पूर्ववत् )

---

( १ ) अन्नम् प्रत्येक भोज्य पदार्थ को कहते हैं। यहां अन्न से अभिप्रेत घृत से है जो विपनाशक है।

( २ ) भाद्रपद में बिजली की कड़क से वर्षा में अधिक उत्पन्न हुई मक्खी मच्छर आदि "स्वयंजात कीट" नष्ट होजाया करते हैं।

ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ५ ॥ अथर्व० ३। २७। ५ ॥

शब्दार्थ—( ध्रुवा दिक् ) नीचे की दिशा में। ( विष्णुः ) व्यापक ईश्वर। ( अधिपतिः ) स्वामी है। और ( कल्माष, काली। ( ग्रीवा ) गर्दन वाले से। ( रक्षिता ) रक्षा करता है। ( वीरुध ) वृक्षलता आदि। ( इषवः ) बाणरूप हैं। ( शेष पूर्ववत् )

( नोट ) "कल्माषग्रीवा" काली गर्दन वाले से अभिप्राय धुआं आदि से उत्पन्न विषैले वायु (Carbonic acid) से है इस विषैले वायु को वृक्ष आदि अपने भीतर ग्रहण कर लेते हैं और उसके बदले में शुद्ध प्राणप्रद वायु (Oxygen) अपने भीतर से निकालते हैं, जिससे प्राणियों की रक्षा होती है।

ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ६ ॥ अथर्व० ३ । २७ । ६ ॥

शब्दार्थ—( ऊर्ध्वा दिक् ) ऊपर की दिशा में। ( बृहस्पतिः ) महान् ईश्वर । ( अधिपतिः ) स्वामी और ( श्वित्रः ) श्वेतकुष्ठादि रोगों से । ( रक्षिता ) रक्षा करने वाला है । ( वर्षम् ) वर्षा का जल ( इषवः ) बाण तुल्य है । ( शेष पूर्ववत् )

नोट—( श्वित्रः ) यद्यपि श्वेतकुष्ठ को कहते हैं, परन्तु यहाँ सामान्य रोग के अर्थ में है । वर्षा का जल रोगनाशक होता है, इसीलिये अंग्रेज़ी ओषधियों में उन्हें तरल करने के लिये वर्षा के जल (Aqua) के मिलाने का विधान है।

छहों मन्त्रों का नीचे एक चित्र दिया जाता है, जिससे समस्त मन्त्रों का स्पष्ट भाव एक जगह ही मालूम होजावेगाः—

| सं | दिशा | अधिपति | किससे रक्षा करता है | साधन क्या है |
|---|---|---|---|---|
| १ | पूर्व | अग्नि | असितः=अन्धकारसे | सूर्य्यकिरण |
| २ | दक्षिण | इन्द्र | टेढ़े चलने वाले सर्प आदि से | चन्द्र किरण |
| ३ | पश्चिम | वरुण | विषैले जन्तुओं से | घृत |
| ४ | उत्तर | सोम | स्वयं उत्पन्न कीटादि से | बिजली |
| ५ | नीचे | विष्णु | विषैली गैस से | वृक्षादि |
| ६ | ऊपर | बृहस्पति | रोगों से | वर्षा का जल |

## तीसरा कर्त्तव्य

## मनुष्य को ईश्वर के सम्बन्ध में क्या करना चाहिये ?

### उपस्थान मन्त्र

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १ ॥
यजु० ३५ । १४ ॥

शब्दार्थ—( वयम् ) हम । ( तमसः, परि ) अविद्यान्धकार से रहित । (स्वः) सुख-स्वरूप । ( उत्तरम् ) प्रलय के पश्चात् भी रहने वाले । ( देवम् ) देव ( देवत्रा ) दिव्य गुण-युक्त । ( उत्तमम् ) सर्वोत्तम । ( ज्योतिः ) ज्योतिःस्वरूप । ( सूर्य्यम् ) चराचर जगत् के आत्मा को । ( पश्यन्तः ) जानते हुए । (उत्तमम्) उच्चभाव से ( अगन्म ) प्राप्त हों ।

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ २ ॥ यजु० ३३ । ३१ ॥

शब्दार्थ—( उ ) निश्चय । ( त्यम् ) उस । ( जातवेदसम् ) वेदों के प्रकाशक । ( सूर्य्यम् ) चराचरात्मा । ( देवम् ) ईश्वर को । ( विश्वाय ) सब को । ( दृशे ) दिखलाने के लिये । ( केतवः) जगत् की रचना आदि गुण-रूप, पताकायें ( उत्, वहन्ति ) भली भाँति दिखलाती हैं ।

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्र-स्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावा पृथिवी अन्त-रिक्षꣳ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ३ ॥ यजु० ७ । ४२ ॥

शब्दार्थ—वह ईश्वर ( देवानाम् ) उपासकों का । ( चित्रम् ) विचित्र । ( अनीकम् ) बल । ( मित्रस्य ) वायु । ( वरुणस्य ) जल और ( अग्नेः) अग्नि का । ( चक्षुः ) प्रकाशक । ( द्यावा ) प्रकाशक और ( पृथिवी ) अप्रकाशक लोकों तथा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष का धारक । ( सूर्य्यः ) प्रकाशस्वरूप ।

( जगतः ) जंगम ( च ) और । ( तस्थुषः ) स्थावर का ( आत्मा ) आत्मा । ( उदगात् ) है ।

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥

यजु० ३६ । २४ ॥

शब्दार्थ—( तत् ) वह ब्रह्म । ( चक्षुः ) सर्व-द्रष्टा । ( देवहितम् ) उपासकों का हितकारी । (शुक्रम्) पवित्र । ( पुरस्तात् ) सृष्टि के पूर्व से । ( उच्चरत् ) वर्तमान है । ( पश्येम ) उसकी कृपा से हम देखें । ( शरदः शतम् ) १०० वर्ष तक । ( जीवेम ) जीवें । ( शरदः शतम् ) १०० वर्ष तक । (शृणुयाम) सुनें । ( शरदः शतम् ) १०० वर्ष तक । ( प्रब्रवाम ) बोलें । ( शरदः शतम् ) १०० वर्ष तक । ( अदीनाः ) स्वतन्त्र । ( स्याम ) रहें । ( शरदः शतम् ) १०० वर्ष

तक। ( च ) और ( शरदः शतात् ) १०० वर्ष से। ( भूयः ) अधिक भी देखें, सुनें आदि।

यहां फिर आचमन मन्त्र पढ़कर तीन आचमन करने चाहियें।

## गायत्री मन्त्र

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो-देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

यजु० ३६। ३॥

शब्दार्थ—( ओम् ) ईश्वर का मुख्य नाम। ( भूः ) सत्। ( भुवः ) चित्। ( स्वः ) आनन्द ( सवितुः ) जगतोत्पादक। ( देवस्य ) दिव्यगुण युक्त ईश्वर के। ( तत् ) उस। ( वरेण्यम् ) ग्रहण करने योग्य। ( भर्गः ) शुद्धस्वरूप को। ( धीमहि ) हम धारण करें। ( यः ) जो। ( नः ) हमारी ( धियः ) बुद्धियों को। ( प्रचोदयात् ) प्रेरित करे।

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च

नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ यजु० १६ । ४१ ॥

शब्दार्थ—( नमः ) नमस्कार हो । उस ( शम्भवाय ) आनन्दमय । ( च ) और । ( मयोभवाय ) आनन्दस्वरूप के लिये । ( नमः ) नमस्कार हो । उस ( शंकराय ) कल्याणकारी । ( च ) और । ( मयस्कराय ) सुखदाता के लिये । ( नमः ) नमस्कार हो । उस ( शिवाय ) मङ्गलस्वरूप । ( च ) और । (शिवतराय) अत्यन्त आनन्ददाता के लिये ॥

व्याख्यान

मनुष्य, कर्तव्य की पूर्ति के लिये, कर्तव्य [ मनुष्य ] योनि में आया करता है । कर्तव्य तीन हैं जिनकी पूर्ति उसको करनी होती है—( १ ) उसे अपने साथ क्या करना चाहिये । ( २ ) अन्यों के साथ क्या करना चाहिये । ( ३ ) ईश्वर के साथ क्या करना चाहिये । इन्हीं कर्तव्यों का विधान ब्रह्म-यज्ञ अर्थात् वैदिकसन्ध्या में है, मुख्य सन्ध्या

आचमन 'शन्नो देवी०' मन्त्र से प्रारम्भ होकर 'नमः शम्भवाय०' इस नमस्कार मन्त्र के साथ समाप्त होता है।

शन्नो देवीरभिष्टय० इत्यादि मन्त्र में सन्ध्या का उद्देश्य वर्णित है। मन्त्र का भाव यह है कि "परमेश्वर जो सर्वप्रकाशक और सर्वव्यापक है, इच्छित फल और आनन्द की प्राप्ति के लिये हम पर कल्याणकारी हो और हम पर सुख की वर्षा करें"—संसार में मनुष्य इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये आया करता है और इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये तीनों कर्तव्यों का पालन किया करता है। मनुष्य-जीवन का उद्देश्य यदि दो शब्दों में वर्णन कर देना हो, तो इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनुष्य को दुनियां में अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत करना चाहिये कि जब वह यहां से विदा हो तो उसे दुनियां के हर्षसमुदाय, खुशी के मजमुए (Happiness के Total) में कुछ वृद्धि

करके जाना चाहिये । मन्त्र में इसी हर्ष की मात्रा-वृद्धि के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है। इस प्रकार आचमन मन्त्र द्वारा तीनों कर्तव्यों का उद्देश्य वर्णन कर देने के बाद उन तीनों कर्त्तव्यों का विधान किया गया है । पहला कर्त्तव्य कि मनुष्यों को अपने साथ क्या करना चाहिये, इन्द्रिय-स्पर्श मंत्र से प्रारम्भ होकर अघमर्षण मन्त्रों तक समाप्त होता है । दूसरा कर्त्तव्य "मनसापरिक्रमा" के ६ मन्त्रों में वर्णित है । तीसरे और अन्तिम कर्त्तव्य का उपदेश उपस्थान के मन्त्रों में किया गया है । अब उनका क्रमशः वर्णन किया जाता है ।

## पहला कर्त्तव्य

## मनुष्य को अपने साथ क्या करना चाहिये ?

इन्द्रिय-स्पर्श के मंत्र में इन्द्रियों को स्पर्श करते हुए प्रार्थना की गई है कि उनमें बल आवे। यह मनुष्य का अपने साथ पहला कर्त्तव्य

है। उसे अपनी इन्द्रियों को बलवान् बनाना चाहिये। मनुष्य का बाह्य शरीर इन्द्रियमय अर्थात् इन्द्रियों का समुदायमात्र है। इस बाह्यशरीर अर्थात् समस्त ज्ञान और कर्मेन्द्रियों को बलवान् बनाना चाहिये। आँख, नाक, कान, हाथ, पांव आदि दशों इन्द्रियों को बलवान् बनाना कर्त्तव्य है। स्पर्श करने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक इन्द्रिय पर विशेष ध्यान देकर इच्छा शक्ति का उस पर प्रयोग करके मन में यह विचार स्थिर करना चाहिये कि स्पृष्ट (छुए हुए) इन्द्रिय में बल आरहा है। बल की इतनी अधिक उपयोगिता है कि अपने सम्बन्धी कर्त्तव्यों में उसका सब से पहला स्थान है। उपनिषद् में कहा गया है कि "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"। [ मुण्डकोपनिषद् ३।२।४ ] अर्थात् जो मनुष्य निर्बलात्मा और निर्बलेन्द्रिय हैं वे ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते, परन्तु बल का जहाँ सदुपयोग होता है वहाँ दुरुपयोग भी हो सकता है। अन्याय और अत्याचार

बल ही से किये जाते हैं। इसलिये बल के लिये नियन्त्रण अपेक्षित है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के वास्ते मनुष्य का दूसरा कर्त्तव्य, इसी स्पर्श मन्त्र में यह स्थिर किया गया है कि उसे अपनी इन्द्रियों को यशवाला भी बनाना चाहिये। बल के साथ यश को जोड़ देने से बल का नियन्त्रण होगया, अब बल का दुरुपयोग नहीं हो सकता। अन्याय और अत्याचार करने वाले कभी नेकनाम नहीं होते, वे सदैव बदनाम रहा करते हैं। संसार में यश और कीर्ति उन्हीं की हुआ करती है जो बल का सदुपयोग किया करते हैं। यश इसलिये अनिवार्य्य है। प्रसिद्ध कहावत है "कीर्त्तिर्यस्य स जीवति" अर्थात् वही मनुष्य मर जाने पर भी ज़िन्दा समझा जाता है जिसका संसार में यश रहा करता है[1]। अस्तु।

---

(१) सर्व जीवत्ववाद ( Animism ) जिसका जन्म यूनान में हुआ था, उसका एक मुख्य सिद्धान्त ही यह था कि जबतक दिवङ्गत प्राणी के लिये प्रेम और

मनुष्य का जहां पहला कर्त्तव्य यह है कि अपने को बलवान् बनावे उसके साथ ही दूसरा कर्त्तव्य यह है कि अपनी इन्द्रियों को वशवाला भी बनावे। मनुष्य को अपने साथ तीसरी बात क्या करनी चाहिये इसका आदेश मार्जन मन्त्र में किया गया है। मार्जन मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि उसके शिर, नेत्रादि इन्द्रियों में पवित्रता आवे, यही अपने साथ करने के लिये तीसरा कर्त्तव्य है। मनुष्य को अपनी समस्त इन्द्रियों को पवित्र बनाना चाहिये। इन्द्रियों में पवित्रता आने से मनुष्य का आचार ठीक हुआ करता है और मनुष्य सदाचारी समझा जाया करता है। पवित्रता से इन्द्रियों का नियन्त्रण हुआ करता है। यदि नेत्र पवित्र हैं तो इसका भाव यह है कि वह "मातृवत् परदारेषु" की नीति के अवलम्बन के साथ ठहरा हुआ है। और किसी को कुदृष्टि

---

इसकी शुभ-वृत्ति जगत् में चालू रहा करती है वह प्राणी पवित्र ही समझा जाता है। ( आत्मदर्शन पृष्ठ १७० )

अर्थात् पाप दृष्टि से नहीं देख सकता। पवित्रता से स्वास्थ्य भी प्राप्त हुआ करता है, मनु ने कहा है—
"अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति" अर्थात् जल से शरीर शुद्ध हुआ करता है। किस प्रकार शरीर की शुद्धि से मनुष्य स्वस्थ हुआ करता है इस पर थोड़ा विचार करो। हमारा यह शरीर असंख्य छिद्रों से पूर्ण है। इन छिद्रों से शरीर का भीतरी मल पसीने के द्वारा खारिज हुआ करता है। जिस प्रकार कारखानों में दिन रात काम होने से बहुतसा मल बाहर फेंक देने के योग्य निकला करता है इसी प्रकार शरीर-रूपी कारख़ाने में निरन्तर काम होने से कई पौंड मल मूत्र और पसीने के रूप में निकला करता है। तीनों मार्ग शुद्ध और साफ़ होने चाहियें। तभी यह मल ख़ारिज होकर शरीर शुद्ध हो सकता है, इस-लिये मनुष्य का कर्त्तव्य है कि शरीर को जल से स्नान द्वारा शुद्ध रक्खे। शुद्ध रखने का मतलब यह है कि शरीर अच्छी तरह मल मल कर साफ़ किया

जावे जिससे प्रत्येक छिद्र का मुंह साफ, खुला हुआ और इस योग्य हो जावे कि सुगमता से भीतर का मल बाहर निकाल सके। स्नान न करने, अथवा नाम-मात्र के स्नान करने से छिद्रों का मुंह मल से बन्द सा रहेगा और भीतर का मल बाहर न निकल सकने से वह भीतर ही रहकर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनेगा। इसी प्रकार विचार करने से पता चलेगा कि प्रत्येक इन्द्रिय की शुद्धि से उनकी नीरोगता बनी रहती है। इसलिये अपने सम्बन्ध में करने के लिये मनुष्य का तीसरा कर्तव्य यह है कि वह अपनी इन्द्रियों को शुद्ध रक्खे। इन्द्रियों (बाह्य-शरीर) के शुद्ध रखने के सम्बन्ध में मनुष्य के इस प्रकार तीन कर्तव्य हैं:—

(१) इन्द्रियों को बलवान् बनाना।

(२) इन्द्रियों को वशवाला बनाना।

(३) इन्द्रियों को पवित्र बनाना।

इन कर्तव्यों के पालन कर लेने से इन्द्रियों अर्थात् बाह्य-शरीर के सम्बन्ध में मनुष्य का कर्तव्य पूरा हो जाता है। अब चौथे कर्तव्य पर विचार करना है—स्थूल शरीर का बाह्य भाग इन्द्रियमय है। उससे सम्बन्धित कर्तव्यों का उल्लेख हो चुका है। स्थूल शरीर के अन्तर्भाग में फेफड़ा, हृदय, पाचनेन्द्रिय, मस्तिष्कादि सम्मिलित हैं। इनके सिवा सूक्ष्म शरीर के अवयव मन, चित्त आदि अन्त:करण हैं। स्थूल शरीर के अन्तरीय भाग और सूक्ष्म शरीर को पुष्ट और शुद्ध करने के लिये प्राणायाम किया जाता है। यही मनुष्य का चौथा कर्तव्य है जो उसे अपने सम्बन्ध में करना चाहिये। प्राणायाम से उपर्युक्त कार्यों की पूर्ति किस प्रकार से होती है इस पर थोड़ा विचार करना है:—

## प्राणायाम और शारीरिक उन्नति।

प्राणायाम से शारीरिक उन्नति किस प्रकार होती है इस बात को जानने के लिये एक दृष्टि शरीर के

अन्दर होने वाले अनिच्छिकृत कार्यों में से हृदय और फेफड़े के कार्यों पर डालनी होगी।

## हृदय का स्थूल कार्य।

इस शरीर में दो प्रकार की अतिसूक्ष्म नलियां हैं, एक तो वे जो समस्त शरीर से हृदय में आती हैं और दूसरी नलियां वे हैं जो हृदय से समस्त शरीर में जाया करती हैं। पहिली नलियां "सिरा" और दूसरी "धमनी" कहलाती हैं।

सिराओं का काम यह है कि समस्त शरीर से अशुद्ध रक्त को शुद्ध होने के लिये हृदय में लाया करें। हृदय उस रक्त को शुद्ध करता है और शुद्ध करके शुद्ध रक्त को धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में वापिस भेज दिया करता है। रक्त अशुद्ध क्यों होता है? इसका हेतु यह है कि समस्त शरीर के व्यापारों में उसका प्रयोग होता है और उपयोग में आने से अशुद्ध हो जाता है।

## शुद्ध और अशुद्ध रक्त का भेद ।

शुद्ध रक्त में कुछ चमक लिये हुए अच्छी सुर्ख़ी होती है परन्तु जब वह अशुद्ध हो जाता है तो उस में कुछ मैलापन आ जाता है । शुद्ध रक्त में ऑक्सिजन (Oxygen) काफ़ी मात्रा में रहता है, परन्तु काम में आने से जब यह अशुद्ध हो जाता है तब उसमें ऑक्सिजन की मात्रा नाममात्र रह जाती है और उसकी जगह एक विषैला वायु (Carbonic Acid Gas) रक्त में आ जाता है, और इसी परिवर्तन से रक्त का रंग मैला, स्याही माइल हो जाता है ।

## फेफड़े का काम ।

हृदय में जब अशुद्ध रक्त सिराओं के द्वारा पहुंचता है तो हृदय उसे फेफड़े में भेजता है । यहीं से फेफड़े का काम शुरू होता है । फेफड़ा स्पन्ज की भांति असंख्य छोटे २ घटकों (Cells) का समुदाय है । एक शरीर-वैज्ञानिक ने हिसाब

लगाया है कि यदि लम्बाई चौड़ाई में फेफड़े के इन कणों ( घटकों ) को फैला दिया जावे तो उनका विस्तार १४ हज़ार वर्ग फ़ीट होगा। वे कण एक मांसपेशी ( डाएफ्राम ) की चाल से खुलते और बन्द होते रहते हैं। जब यह कण खुलते हैं तब एक ओर से तो हृदय से अशुद्ध रक्त और दूसरी ओर से श्वास के द्वारा लिया हुआ शुद्ध वायु दोनों मिलकर उन्हें भर देते हैं। अब इन कणों में इस प्रकार से अशुद्ध रक्त और शुद्ध वायु दोनों एकत्र होजाते हैं। तब प्रकृति का एक विलक्षण नियम काम करता है और वह नियम यह है कि जिसमें जो वस्तु नहीं होती वह उसी को दूसरे से अपनी ओर खींचती है। रक्त में तो शुद्ध वायु ( ओक्सिजन ) नहीं है और श्वास के द्वारा लिए हुए वायु में कार्बन वायु नहीं है, इन दोनों में जब उपर्युक्त नियम काम करता है तो उसका परिणाम यह होता है कि रक्त में से कार्बन वायु

निकल कर श्वास के वायु में और श्वास के द्वारा आये हुए वायु में से ओक्सिजन निकल कर रक्त में चला आता है। फल यह होता है कि रक्त इस प्रकार शुद्ध और श्वास के द्वारा आया हुआ वायु अशुद्ध होजाता है। अब शुद्ध रक्त तो हृदय में जाकर धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में चला जाता है और अशुद्ध वायु निःश्वास के द्वारा बाहर निकल जाता है। यह कार्य प्रतिक्षण हुआ करता है।

## हृदय की धड़कन।

हृदय की धड़कन क्या वस्तु है? एक बार हृदय से रक्त का शुद्ध होने के लिये फेफड़े में जाना और फेफड़े से शुद्ध होकर रक्त का हृदय में वापिस आना, बस, इन्हीं दोनों क्रियाओं से हृदय में एक धड़कन बनती है। औसतन एक मिनट में ७२ धड़कनें एक प्रौढ़ पुरुष के हृदय में हुआ करती हैं। विशेष अवस्थाओं में तथा आयु के अन्तर से भी धड़कनों की मात्रा न्यूनाधिक हुआ करती है। आम तौर से एक

सेकण्ड से कम समय ही में एक बार रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में आता और शुद्ध होकर वापिस चला जाता है। एक शरीर-वैज्ञानिक ने हिसाब लगाया है कि इस प्रकार २४ घंटे में २५२ मन रक्त हृदय से फेफड़े में आता है और इतना ही रक्त शुद्ध होकर फेफड़े से हृदय में वापिस चला जाता है। इस धड़कन की आवाज़ "लूब-डप" शब्दों के उच्चारण जैसी होती है। जब हृदय संकुचित होकर रक्त निकालता है तो 'लूब' के सदृश ध्वनि होती है और फैलकर जब रक्त ग्रहण करता है तो डप शब्द की सी ध्वनि होती है। इन दोनों ध्वनियों में समय का कुछ अन्तर अवश्य होता है परन्तु इतना थोड़ा कि दोनों शब्द मिले हुए से ही मालूम होते हैं और विशेषज्ञों के सिवाय साधारण लोग इस अन्तर को नहीं ख़याल कर सकते। अस्तु, अब विचारणीय बात यह है कि फेफड़े में शुद्ध वायु न पहुँचने का परिणाम क्या होता है।

यदि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिये फेफड़े में जावे, परन्तु श्वास के द्वारा पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुँचे अथवा सब कोषों ( कणों ) में जहां रक्त पहुँच चुका है, शुद्ध वायु न पहुँचे तो उसका परिणाम क्या होगा ? फेफड़े के मुख्यतया तीन भाग हैं-( १ ) ऊपरी भाग जो प्रायः गर्दन तक है, ( २ ) मध्य भाग जो दोनों ओर हृदय के इधर उधर है, ( ३ ) निम्न भाग जो "डायेफ्राम" ( मांसपेशी ) के ऊपर दोनों ओर है। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है वह पूर्ण श्वास नहीं होता। इसीलिए फेफड़े के सब भागों अथवा सब भागों के समस्त कोषों में नहीं पहुंचता। जब फेफड़े के ऊपरी भाग में श्वास द्वारा वायु नहीं पहुंचता तो ऊपरी भाग फेफड़े का रोगी होना शुरू होता है और उसके इस प्रकार त्रुटिपूर्ण हो जाने से एक रोग हो जाता है जिसे ट्यूबरक्यूलोसिस या तपेदिक ( Tuberculosis ) कहते हैं। और जब इसी प्रकार मध्य और निम्न भाग

फ़ेफड़ों के बेकार और त्रुटिपूर्ण होने लगते हैं तो उसके परिणाम में खांसी, दमा, निमोनिया, जीर्णज्वर आदि अनेक रोग, जो फेफड़ों से सम्बन्धित हैं, होने लगते हैं।

## एक और भयङ्कर परिणाम।

इस प्रकार पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुंचने से जहां एक ओर फेफड़ों से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं तो दूसरी ओर उसका एक परिणाम यह भी होता है कि हृदय से रक्त जो शुद्ध होने के लिये फेफड़े में आता है वह बिना शुद्ध हुए, अशुद्ध ही हृदय में वापिस चला जाता है। हृदय भी उसे रोक नहीं सकता। वहां से वह धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में पहुंचता है। इसका फल रक्तविकार होता है। रक्त के विकृत होने से मामूली रोग खाज (खुजली, खारिश) से लेकर भयङ्कर रोग कुष्ठ तक हो जाते हैं। इसलिये इन सब दुष्परिणामों से बचने के लिये आवश्यक है कि फेफड़े वायु

से पूरित होते रहें और उनका कोई भी कण ( कोष ) ऐसा न रहने पावे जहां वायु न पहुंच सके। यहीं से प्राणायाम की आवश्यकता का सूत्रपात होता है।

## प्राणायाम की आवश्यकता।

प्राणायाम के द्वारा मनुष्य के भीतर जब वह श्वास बाहर रोक देता है तब श्वास लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है। उसका फल यह होता है कि श्वास भीतर लेते समय श्वास वेग के साथ तेज़ हवा या आंधी के सदृश फेफड़े में पहुंचता है। और जिस प्रकार आंधी या तेज़ हवा नगर के कोने कोने में प्रवेश करती है उसी प्रकार वेग के साथ श्वास के द्वारा भीतर लिया हुआ वायु फेफड़ों के एक एक कोष तक पहुंच जाता है और उससे न तो फेफड़े ही में कोई खराबी होने पाती है और न रक्त ही में कोई विकार उत्पन्न होने पाता है। अस्तु, देख लिया गया है कि प्राणायाम शारीरिक उन्नति का

हेतु ही नहीं, किन्तु मुख्य हेतु है। इसलिये स्वस्थ रहने के लिये प्रत्येक नर नारी के लिये आवश्यक है कि वे प्राणायाम करें। बहुत वृद्ध पुरुष जो प्राणायाम न कर सकें उन्हें गहरे श्वास लेने का अभ्यास नित्यप्रति १० मिनट तक करना चाहिये। छोटे बच्चे जो प्राणायाम नहीं कर सकते उन्हें दौड़ने का अभ्यास कराना चाहिए। उससे एक दरजे तक प्राणायाम की ज़रूरत पूरी हो जाती है।

### प्राणायाम से सूक्ष्म शरीर की शुद्धि।

प्राणायाम से मन चित्तादि के मल दूर होते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है:—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥
मनु० ६।७१॥

अर्थात्—जैसे अग्नि में तपाने से (सुवर्णादि) धातुओं का मल नष्ट हो जाता है वैसे ही प्राणायाम के अभ्यास से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं।

मानसिक उन्नति के लिये दो ही बातों की ज़रूरत होती है, एक मन आदि से विकारों का दूर होना, दूसरे चित्त की एकाग्रता प्राप्त होना, इन दोनों की सिद्धि प्राणायाम से हुआ करती है। इस प्रकार प्राणायाम सूक्ष्म शरीर ( मन आदि ) की उन्नति का भी कारण है। प्राणायाम के इस प्रकार अभ्यास करने से स्थूल शरीर के भीतरी अवयवों और सूक्ष्म शरीर की उन्नति होने से मनुष्य के चौथे कर्तव्य की, जो अपने सम्बन्ध में रखता है पूर्ति होती है।

पांचवें कर्तव्य की पूर्ति अघमर्षण मन्त्रों से होती है। अघमर्षण मन्त्रों में जगत् किस प्रकार उत्पन्न हुआ इसका वर्णन है, जगत् की रचना इतनी महत्त्वपूर्ण और स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति उसे सुगमता से देख और उसका महत्त्व अनुभव कर सकता है। जगत् की विलक्षण रचना जगत् में उत्पन्न प्रत्येक वस्तु से

प्रकट होती है। वृक्षों पर दृष्टि डालिये तो जितने प्रकार के वृक्ष हैं सब का रङ्ग और सब की पत्तियों का आकार निराला है। कितने विलक्षण ढंग से नींबू खट्टापन, ईख मिठास, मिर्च कडुआपन और प्रत्येक वृक्ष अपना २ स्वाद भूमि से ले लिया करते हैं, प्रत्येक की कितनी विलक्षण कार्यप्रणाली है जो देखने और समझने ही से सम्बन्ध रखती है। एक परमाणु किस प्रकार अपने भीतरी केन्द्र और उसके चारों ओर विद्युत् कणों को भ्रमण में रखता हुआ सूर्यमण्डल का नमूना बना हुआ है, यह ऐसी बात है जो बड़े से बड़े वैज्ञानिक को भी चकित कर रही है। सूर्य को दिन में काले कांच के टुकड़े को आंखों के सामने रखकर देखो तो सूर्य्य सदैव एक प्रकार की गति में दिखाई देगा। इस गतिमय सूर्य को ध्यान में रखते हुए रात्रि में आकाश पर दृष्टि डालो तो इस प्रकार की गति करने वाले असंख्य सूर्य्य दिखाई देंगे।

ग्रह और उपग्रह की गणना का तो ज़िक्र ही क्या, सूर्य्यों की गणना भी आज तक बड़े से बड़े ज्योतिषी नहीं कर सके। अर्वाचीन ज्योतिषियों ने अवश्य यह जानने का यत्न किया है कि हमारे सूर्य्य से कम से कम २६०० शङ्ख से कुछ अधिक मीलों की दूरी तक कोई और दूसरा सूर्य नहीं है। यदि इसी संख्या को दो सूर्य्यों के बीच का अन्तर ठहराया जावे और इस बात को ध्यान में रक्खा जावे कि सूर्य्य असंख्य हैं और फिर विचार किया जावे कि यह ब्रह्माण्ड कितना विस्तृत है तो मानवी बुद्धि की आँखें चकाचौंध में पड़ जाती हैं और उन्हें इधर उधर कुछ दिखाई नहीं देता और फिर जब पुरुष सूक्त के इस मन्त्र पर विचार करते हैं कि:—

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

यजुर्वेद ३१। ३

अर्थात्—( अस्य ) ईश्वर का ( एतावान् ) यह ब्रह्माण्ड से ( महिमा ) महत्व पूर्ण सामर्थ्य है ( अतः ) इस ब्रह्माण्ड से भी ( पूरुषः ) वह व्यापक ईश्वर ( ज्यायान् ) महान् है। ( च ) और ( अस्य ) ईश्वर का ( विश्वा भूतानि ) यह समस्त ब्रह्माण्ड ( पादः ) एक अंश है ( अस्य त्रिपाद् ) उसके तीन अंश ( अमृतम्-दिवि ) अपने प्रकाशमय अमर स्वरूप में हैं—तो उस ( ईश्वर ) की महत्ता के सामने मनुष्य का शिर झुक जाता है और हृदय प्रेम से पूरित हो उठता है और अनायास उसकी ज़बान से निकल जाता है:—

अणोरणीयान्महतो महीयान् ( कठो० २ । २० )

प्रभो ! आप सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् हैं। मनुष्य के हृदय की यह अवस्था होने पर उसमें श्रद्धा का उच्च भाव उत्पन्न हो जाता है और आस्तिकता के श्रेष्ठ भाव हृदय में जागृत हो जाते हैं। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर प्राणी निष्पाप हो

जाता है। पाप की प्रवृत्ति इस श्रद्धाग्नि से जल भुन कर नष्ट हो जाती है। अघमर्षण मन्त्रों का यही उद्देश्य है। इस अवस्था का उत्पन्न कर लेना मनुष्य का पाँचवां और अन्तिम कर्त्तव्य है जो उसे अपने सम्बन्ध में करना चाहिये, यहां सन्ध्या का पहला भाग समाप्त हो जाता है। मनुष्य के कर्त्तव्यों का बतला देना इस भाग का उद्देश्य है। इस भाग का निष्कर्ष यह है कि मनुष्य को अपने सम्बन्ध में इन पाँच कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये:—

(१) इन्द्रियों को बलवान् बनाना।

(२) उन्हें यशवाला बनाना।

(३) उन्हें पवित्र बनाना।

(४) स्थूल शरीर के आन्तरिक अवयवों और सूक्ष्म शरीर को भी पुष्ट और शुद्ध बनाना।

(५) ईश्वर के प्रति हृदय में श्रद्धा के उच्च भाव उत्पन्न करना।

# दूसरा कर्त्तव्य

## मनुष्य को अन्यों के साथ क्या करना चाहिये।

सन्ध्या के मनसापरिक्रमा के ६ मन्त्रों में इस दूसरे कर्त्तव्य का विधान किया गया है मनसापरिक्रमा का भाव है कि मन में ईश्वर के सभी दिशाओं में परिपूर्ण होने अर्थात् सर्वव्यापकता के भावों का जागृत कर लेना। इन मन्त्रों में ईश्वर को न केवल सम्पूर्ण दिशाओं में परिपूर्ण देखा गया है किन्तु उसे इस रूप में भी देखा गया है कि वह सभी ओर से हमारी रक्षा करता है। ऐसे रक्षक प्रभु को नमस्कार करते हुए उससे याचना की गई है कि—

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

जो कोई हमसे द्वेष करता है और जिस किसी से हम द्वेष करते हैं ईश्वर 'आप' उस द्वेष को नष्ट

कर देवें, जिससे न हम किसी से द्वेष कर सकें और न कोई हमसे द्वेष कर सके। जाति या समाज में झगड़ों के उत्पन्न होने का कारण परस्पर का ईर्ष्या द्वेष ही हुआ करता है। यदि यह ईर्ष्या द्वेष बाक़ी न रहे तो फिर सभी प्रकार के झगड़े शान्त हो सकते हैं और झगड़ों के शान्त हो जाने से सद्भाव स्थापित होकर परस्पर भ्रातृ-प्रेम उत्पन्न होकर चिरस्थायिनी शान्ति की उत्पत्ति होती है। यहाँ पर स्वाभाविक रीति से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सन्ध्या तो हम करते हैं। इसलिये यह संभव है कि हमारे भीतर से अन्यों के प्रति द्वेषभाव का नाश होजाय। परन्तु अन्यों के हृदय का द्वेष किस प्रकार नष्ट हो सकता है। और इसी प्रश्न का ठीक उत्तर न समझ कर कोई उपर्युक्त वाक्य का अर्थ यह किया करते हैं कि जो हमको द्वेष करता है और जिसको हम द्वेष करते हैं उस व्यक्ति को ईश्वर नाश कर देवे, परन्तु मेरी तुच्छ सम्मति में इस प्रकार के अर्थ से जहां मन्त्र

का उच्च भाव नीचा होता है, वहां पक्षपात की भी गन्ध आती है। द्वेष असल में पातक है और वह किसी को किसी से नहीं करना चाहिये, और जहां भी इस (द्वेष) का अस्तित्व हो, नष्ट होजाना चाहिये। योगदर्शन में कहा गया है—"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।" अर्थात् जब मनुष्य मन, वाणी और अमल तीनों से अहिंसक हो जाता है तो उसके लिये सभी वैर का त्याग कर देते हैं। यदि इसी मर्यादा के अनुसार एक प्राणी अपने हृदय को द्वेष से खाली कर लेता है तो उसका आवश्यक फल यह होगा कि उसकी निर्दोषता उसकी आँखों, उसकी आकृति और उसकी सभी बातों से अन्यों पर प्रकट होने लगेगी और आवश्यक रीति से उसका प्रभाव अनुभू अर्थात् अनुभवकर्ता पर यह होगा कि उसका हृदय भी ऐसे व्यक्ति के लिए द्वेषरहित हो जायगा। जगत् में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। भेड़िये मनुष्य के बच्चों को खाने के लिये उठा लेजाते हैं। परन्तु पालकों

की निर्दोष आँखों का उन पर प्रभाव यह पड़ता है कि बजाय मारने के वे उनकी परवरिश करने लगते हैं। ऐसे अनेक बच्चे जिनका पालन पोषण भेड़ियों ने किया था बरेली अनाथालय तथा अन्य स्थानों पर आचुके हैं और अनेक पुरुष स्त्रियों ने उन्हें अपनी आंखों से देखा भी है। "हर्ष-चरित" में आता है कि राजा हर्षवर्धन जब दिवाकर की तपोभूमि में गये तो उन्होंने हिंसा त्यागे हुए एक शेर को देखा जो आश्रम-वासियों के साथ मिलजुल कर रहा करता था। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् थोरियो (Thoreau) के लिये भी कहा गया है कि उसने अहिंसा की सिद्धि की थी। और फल यह था कि साँप, बिच्छू, शहद की मक्खी आदि उसके शरीर के सम्पर्क में आजाने पर भी उसको कष्ट नहीं देते थे। इसलिये सन्ध्या करने वालों के लिये आवश्यक है कि वे अन्यों का विचार छोड़कर अपने हृदय को दोषरहित करने का यत्न करें। इसीलिये एक बार की सन्ध्या में ही ६ बार इस

आवश्यक बात को दुहराया तिहराया गया है। ऐसा कर लेने से वे अपने उस कर्त्तव्य का पालन कर सकेंगे जो उनको अन्यों के सम्बन्ध में पूरा करना है। जिस समय उनके हृदय अन्यों के लिये द्वेष रहित हो जावेंगे तो अन्य आवश्यक बातें, जो समाज या जाति बनाने के लिये अपेक्षित हैं, वे उनका स्वयमेव पालन करने लगेंगे।

———o———

## तीसरा कर्त्तव्य

## मनुष्य को ईश्वर के सम्बन्ध में क्या करना चाहिये ?

सन्ध्या में आये हुए उपस्थान के मन्त्रों में इस तीसरे कर्त्तव्य का, कि मनुष्य को ईश्वर के सम्बन्ध में क्या करना चाहिये, यह विधान है। उपस्थान और उपासना दोनों शब्द प्रायः पर्य्यायवाचक से हैं और दोनों का एक ही भाव है अर्थात् ईश्वर के समीप होना।

मनुष्य को ईश्वर के समीप होने की क्यों ज़रूरत है और क्यों उसे ईश्वर की उपासना करनी चाहिये, इसका कारण यह नहीं है कि ईश्वर हमारी उपासना का हाजतमन्द है। बल्कि इसका हेतु और मुख्य हेतु यह है कि मनुष्य के अधिकार में अपने को अच्छा बनाने के जितने साधन हैं उनमें यह श्रेष्ठतम साधन है। मनुष्य अपने जीवन का कुछ उद्देश्य रखता है जिसका वर्णन इस व्याख्यान के प्रारम्भ में हो चुका है। उद्देश्य की पूर्ति के लिये आदर्श की ज़रूरत होती है। अच्छे से अच्छे मनुष्य का आदर्श ही क्यों न हो वह त्रुटि से रहित नहीं हो सकता। परन्तु ईश्वर का आदर्श सदैव त्रुटि रहित होता है। इसलिये ईश्वर-को आदर्शरूप में रखकर उसके गुणों को अपने भीतर लाने के लिये उनका सार्थक जप करना चाहिये, उन गुणों के अर्थ की भावना मन में करने से जैसी कि जप की मर्यादा है:—

तज्जपस्तदर्थभावना। ( योगदर्शन )

मनुष्य के भीतर उन गुणों का प्रभाव पड़ता है और क्रमशः वे उसके भीतर आने लगते हैं। जितने २ गुणों का समावेश मनुष्य के आत्मा में इस प्रकार होता जावेगा उतना ही वह ईश्वर के समीप होता जावेगा और जितना समीप होता जावेगा उतना ही अधिक गुणवान् बनता जावेगा। यही तीसरे कर्त्तव्य की पूर्ति का मूल उद्देश्य है।

उपस्थान के मन्त्रों में ईश्वर के गुणों का इस प्रकार वर्णन है:—

| मन्त्र | गुण |
|---|---|
| पहला मन्त्र- | ( १ ) तमसस्परि=अन्धकार रहित। |
| | ( २ ) उत्तर=प्रलय के बाद रहनेवाला |
| | ( ३ ) देव=प्रकाशस्वरूप। |
| | ( ४ ) सूर्य्य=प्रकाशपुन्ज। |
| | ( ५ ) ज्योतिरुत्तमम्=अलौकिक प्रकाशमय। |
| | ( ६ ) स्वः=सुखस्वरूप। |

| मन्त्र | | गुण |
|---|---|---|
| दूसरा मन्त्र- | ( ७ ) | जातवेदाः=वेद ( ज्ञान ) का उत्पन्न करने अथवा देनेवाला। |
| तीसरा मन्त्र- | ( ८ ) | चक्षु=द्रष्टा |
| चौथा मन्त्र- | ( ९ ) | शुक्र=पवित्र। |
| पाँचवां मन्त्र- | ( १० ) | भूर्भुवः स्वः=सच्चिदानन्द। |
| | ( ११ ) | सविता=उत्पादक। |
| | ( १२ ) | वरेण्यम्=ग्रहण करने योग्य। |
| | ( १३ ) | भर्गः=शुद्ध। |
| | ( १४ ) | देव=ज्योतिर्मय। |
| छठा मन्त्र- | ( १५ ) | शम्भु=आनन्दमय। |
| | ( १६ ) | मयोभव=आनन्दस्वरूप। |
| | ( १७ ) | शङ्कर=कल्याणकारी। |
| | ( १८ ) | मयस्कर=सुखदाता। |
| | ( १९ ) | शिव=मङ्गलस्वरूप। |
| | ( २० ) | शिवतर=अत्यन्त आनन्ददाता |

मनुष्य के भीतर इन बीस गुणों में से यदि

दो चार का भी समावेश हो जावे तो उसका कल्याण हो सकता है। उपस्थान के मन्त्रों का उद्देश्य भी यही है कि मनुष्यों में प्रभु की दिव्य ज्योति आवे और उनका कल्याण कर देवे।

## तीन आवश्यक साधन।

इन तीनों कर्तव्यों के पालन करने के लिये तीन बातों की ज़रूरत हुआ करती है—

पहली आवश्यकता—मनुष्य के पास समय होना चाहिये जिसमें इन कर्तव्यों की पूर्ति का यत्न किया जासके। इसीलिये उपस्थान के चौथे मन्त्र में १०० वर्ष की आयुप्राप्ति की प्रार्थना की गई है। इसका भाव यह नहीं है कि मनुष्य १०० वर्ष तक निरन्तर ईश्वरोपासना ही किया करे और कुछ न करे। इस १०० वर्ष की आयु में सन्ध्या के लिये वास्तव में बहुत थोड़ा समय रक्खा गया है। दिन के २४ घण्टों में केवल २ घंटे प्रातः और सायङ्काल मनुष्य को ईश्वरोपासना और आत्मचिन्तन में

व्यतीत करना चाहिये, बाक़ी समय में वह जो शुभ-कर्म चाहे सो कर सकता है।

## सन्ध्या दो समय ही करनी चाहिये।

सन्ध्या दो ही समय करनी चाहिये ३, ४, ५, ६ बार नहीं। कोई मनुष्य यदि योगी बन कर चाहे तो वह सारी आयु ईश्वर-चिन्तन में लगा सकता है, इसका कभी निषेध नहीं किया जा सकता। परन्तु सन्ध्या का वह नियम, जिसे प्रत्येक प्राणी पालन कर सके यह है कि आवश्यक रीति से प्रातः सायं प्रत्येक नर नारी को सन्ध्या करनी चाहिये। इसके लिये कुछेक प्रमाण दिये जाते हैं:—

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ १ ॥

अथर्व० १९ । ५५ ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—( सायं सायम् ) सायङ्काल ( नः ) हमारे (गृहपति) घरों का रक्षक और ( प्रातः प्रातः )

प्रातःकाल (सौमनसस्य) सुख का (दाता) देने वाला (अग्निः) ईश्वर (वसोःवसोः) उत्तम २ प्रकार के (वसुदानः) ऐश्वर्य देने वाला (एधि) हो। इन दोनों कालों में (त्वा) तुझ को (इन्धानः) प्रकाशित करते हुए (वयम्) हम लोग (तन्वम्) शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें।

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतं हिमा ऋधेम ॥ २ ॥

अथर्व० १९। ५५॥ ४॥

अर्थात्—प्रातःकाल हमारे घरों का रक्षक और सायङ्काल सुखदाता ईश्वर उत्तम प्रकार के ऐश्वर्य का देने वाला हो। (त्वा) आप का (इन्धाना) प्रकाश फैलाते हुए (शतं हिमाः) सौ वर्ष तक (ऋधेम) हम उन्नति करते रहें।

उपत्वाऽग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥ ३॥ सामवेद। १। १। २। ४॥

अर्थात्—हे ( अग्ने ) ईश्वर ( दिवेदिवे ) प्रतिदिन ( दोषावस्तः ) प्रातः सायम् ( धिया ) भक्ति से ( नमः ) नमस्कार ( भरन्तः ) करते हुए ( त्वा उप ) आपके समीप ( आ+इमसि=एमसि ) आते हैं।

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः संध्यामुपासीत । उदयन्तमस्तंयन्तमादित्यमभिध्यायन् ॥ ४ ॥

षड्विंश ब्राह्मण प्र० ४ । खं० ५ ॥

अर्थात्—"इसलिये दिन रात के मेल के समयों में विद्वान् सन्ध्योपासना करे, उदय और अस्त होते हुए सूर्य्य की ओर ध्यान देकर अर्थात् प्रातःकाल पूर्व और सायङ्काल पश्चिम की ओर मुँह करके सन्ध्या करे—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

मनु० २ । १०३ ॥

अर्थात्—जो प्रातःकाल की सन्ध्या न करे और जो सायङ्काल की भी न करे वह सम्पूर्ण द्विजों के कर्म से वहिष्कार्य्य है।

## सन्ध्या के समय की उपयोगिता।

( सं ) उत्तम प्रकार से ( ध्यै ) ध्यान करना यह भाव है जो सन्ध्या शब्द से निकलता है। सन्ध्या शब्द अपने भीतर किसी खास समय को नियत कर देने का भाव नहीं रखता। सिवाय इसके जिस समय में उत्तम रीति से ईश्वर का ध्यान किया जा सके उसी का नाम सन्ध्या काल है। इसका एक कारण है और बड़ा महत्वपूर्ण कारण है। वह कारण यह है कि सन्ध्या केवल भारतवर्ष के लिये ही नहीं जहाँ १२-१२ घण्टे के औसतन दिन रात हुआ करते हैं बल्कि समस्त भूमण्डल के लिये है जिसमें ऐसे देश भी सम्मिलित हैं जहाँ कई दिन और कई मास के बराबर दिन और रात हुआ करते हैं। इसलिये सन्ध्या शब्द का अभिप्राय तो ऐसा

है जो प्रत्येक देश और स्थान के लिये लागू हो सके, परन्तु भारतवर्ष के लिये यहाँ की अवस्था और सूर्य्य के उदय अस्त के समयों पर विचार कर ब्राह्मण ग्रन्थकारों और स्मृतिकारों ने प्रातः और सायं, दिन और रात के दोनों सन्धि-कालों को सन्ध्या का काल नियत किया है। इन कालों की बड़ी उपयोगिता यह है कि प्रत्येक सन्धिकाल में उससे पहले बीतने वाले दिन या रात का काम समाप्त हो जाता है, परन्तु उसके बाद आने वाले रात या दिन का प्रारम्भ नहीं होता। इसलिये यह समय वह होता है जिसमें न दिन के कामों की चिन्ता होती है न रात्रि के कार्यों की। ऐसा और इतना उपयोगी समय इन दो समयों के सिवा और कोई नहीं होता। मध्यान्ह का समय तो अत्यन्त चिन्ता और थकावट का होता है। ऐसी चिन्तित और थकावट की अवस्था में कोई भी साधारण पुरुष, स्त्री ईश्वर का ध्यान नहीं कर सकते। वेद में जहाँ इस प्रकार के वाक्य आये हैं कि—

मम त्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः । मम प्रपित्वे अपि शर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत ॥ ऋ० ८।१।२६ ॥

अर्थात्—"हे ( वसो ) ईश्वर ( सूरे उदिते ) सूर्योदय के समय ( दिवः मध्यन्दिने ) दिन के मध्य में ( अपि शर्वरे ) रात्रि में ( प्रपित्वे ) सायङ्काल के समय ( मम स्तोमासः ) मेरे स्तोत्र ( त्वा ) तुझको ( अवृत्सत ) मेरी ओर करें । इस मन्त्र में दोनों रात और दिन में ईश्वर के स्तोत्र या प्रशंसा के भजन गाने का विधान किया गया है । सन्ध्या से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । अथवा जैसे यह मन्त्र है:—

यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध । यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः ॥ ऋ० । ८ । २७ । १६ ॥

अर्थात्—"हे ( प्रियक्षत्राः ) क्षत्रियो ! ( विश्ववेदसः ) हे सर्वधन विद्वानो ! ( अद्य ) अभी

( यद् ) या ( सूर्य उद्यति ) सूर्य के उदय होने पर ( यद् ) या (निम्रुचि, सूर्यास्त के समय ( प्रबुधि ) या प्रबोधकाल (दिवः मध्यन्दिने) या दिन के मध्य समय ( ऋतं दध ) आप सत्यता को धारण करें।

इस मन्त्र में भी प्रत्येक समय मनुष्यों को ( ऋतु ) तीनों काल में एक जैसी रहने वाली सचाई के धारण करने का विधान है। इसका भी सन्ध्या से कुछ सम्बन्ध नहीं है। ऐसे भी अनेक मन्त्र हैं जिनमें मनुष्यों को सायं प्रातः और मध्य दिन में मेधा ( धारणावती ) बुद्धि के धारण करने का उपदेश है। देखो अथर्व० ६। ८। ५ "मेधां सायं मेधां प्रात० इत्यादि।" या जिनमें इसी प्रकार प्रत्येक समय श्रद्धा के धारण कराने का विधान है। देखो (ऋग्वेद १०।१५१।५ श्रद्धां प्रातर्हवामहे० इत्यादि ) इनका भी सन्ध्या से कुछ सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य को दिन रात प्रत्येक समय ही अच्छे गुणों को ग्रहण करने के लिये यत्नवान् रहना चाहिये।

दूसरी आवश्यकता—मनुष्य को "अदीन" अर्थात् स्वतन्त्र होने की ज़रूरत है, जिससे वह स्वतन्त्रता के साथ सन्ध्या में वर्णित तीनों कर्तव्यों का पालन कर सके। कर्त्ता के लिए पाणिनि के "स्वतन्त्रः कर्त्ता" के आदेशानुसार स्वतन्त्र होना आवश्यक है। इसीलिये उपस्थान के चौथे मन्त्र ही में "अदीनाः स्याम शरदः शतम्" १०० वर्ष तक स्वतन्त्र रहने की भी ईश्वर से प्रार्थना की गई है।

तीसरी आवश्यकता—मनुष्य को इन तीनों कर्तव्यों के पालन करने के लिये जहाँ समय और स्वतन्त्रता की ज़रूरत है उसके साथ ही तीसरी ज़रूरत "बुद्धि" की है। बिना बुद्धि के मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। इसीलिये उपस्थान के पश्चात् पाँचवें (गायत्री) मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हमें मेधा अर्थात् प्रेरित की हुई बुद्धि प्राप्त हो। इन तीनों साधनों के प्राप्त होने से मनुष्य अपने तीनों कर्तव्यों का समुचित रीति से पालन कर सकता है।

सन्ध्या की इस व्याख्या पर दृष्टिपात करने से प्रत्येक समझदार नरनारी इस बात को भली भाँति समझ सकेंगे कि सन्ध्या कितना आवश्यक कर्तव्य है और इसीलिए उसके एक २ शब्दार्थ को समझते और विचार करते हुए बड़ी श्रद्धा और प्रेम से प्रत्येक को सन्ध्या करनी चाहिये।

## सन्ध्या के बाद भजन द्वारा ईश्वरप्रार्थना।

हे दयामय! हम सबों को, शुद्धताई दीजिये।
दूर करके सब बुराई को, भलाई कीजिये ॥ १ ॥
अस कृपा, अनुपम अनुग्रह, हम पै हो परमात्मा।
हों निवासी हर जगह के, सब के सब धर्म्मात्मा ॥ २ ॥
हो उजाला सब के मन में ज्ञान के प्रकाश से।
और अँधेरा दूर सारा हो अविद्या नाश से ॥ ३ ॥
खोटे कर्मों से बचें, सब तेरे गुण गावें सदा।
छूट जावें दुःख सारे, पावें जन सुख सम्पदा ॥ ४ ॥
सारी विद्याओं को सीखें, ज्ञान से भरपूर हों।

शुभ करम में होवें तत्पर, दुष्ट गुण सब दूर हों ॥५॥
यज्ञ हवन से हों सुगन्धित इस धरा के सर्वदेश ।
वायु जल सुखदाई होवें, जायँ मिट सारे कलेश॥६॥
वेद धर्म्मप्रचार में, होवें सभी पुरुषारथी ।
हो परस्पर प्रीति सब में, और बनें परमारथी ॥ ७ ॥
लोभी, कामी और क्रोधी, कोई भी हम में न हो ।
सर्व व्यसनों से बचें, और छोड़ दें मद मोह को ॥८॥
अच्छी संगति में रहें, और वेद मारग पै चलें ।
तेरे ही होवें उपासक, सब कुकर्मों से टलें ॥ ९ ॥
कीजिये सब के हृदय को, शुद्ध अपने ज्ञान से ।
मान भक्तों में बढ़ाओ, अपनी भक्ति दान से ॥१०॥
शम, दम, क्षमा, तप धीरता, ब्रह्मचर्य को धारण करें ।
जबतक जियें हम धर्मयुत, आचार व्रत पालन करें॥ ११॥
तीन तापों से बचा, स्वाधीनता का दान कर ।
विश्वसेवा के लिये, हमें योग्यता प्रदान कर ॥१२॥
सत्य को धारण करें, त्यागें असत्य हि सर्वदा ।
प्राप्ति परमानन्द की हो अभय हम विचरें सदा॥१३॥

सर्व-रक्षक पथ-प्रदर्शक, न्यायकारी मान कर ।
आपको ही नित भजें, हम सर्वव्यापक जान कर ॥१४॥
योग साधन युक्त प्रभु तव, भक्ति सह तन मन करें ।
मुक्त-जीवन प्राप्त कर हम, 'ओ३म्' यश कीर्त्तन करें॥१५॥

[ ४ ख ]

## देव-यज्ञ

सन्ध्या स्वाध्याय ( ब्रह्मयज्ञ ) करने के अनन्तर देवयज्ञ के लिये प्रवृत्त होना चाहिये । देवयज्ञ हवन को कहते हैं । इसकी महिमा आर्ष-ग्रन्थों में बहुत कुछ वर्णित है । एक जगह लिखा है कि—

"अग्निहोत्रं जुहयात् स्वर्गकामः"

अर्थात्—स्वर्ग (सुख शान्ति) की इच्छा वाला पुरुष अग्निहोत्र करे । ऋषि दयानन्दजी स्वकृत सत्यार्थप्रकाश में हवन की महिमा दर्शाते हुए लिखते हैं कि—

"दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धयुक्त वायु और जल

से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है। घर में रक्खे पुष्प, अतर आदि के सुगन्ध में वह सामर्थ्य नहीं हैं कि गृहस्थ वायु को निकाल कर शुद्ध वायु को प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही की सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है।……जिस मनुष्य के शरीर से जितनी दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये। (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

अनेक डाक्टर वैद्य महानुभावों का अनुभव है कि हैजे और प्लेग के दिनों में जिन घरों वा मुहल्लों में हवन यज्ञ विशेषरूप से होता है वे घर और

मुहल्ले उन संक्रामक रोगों से सुरक्षित रहते हैं। अनेक वैद्यकशास्त्र और धर्मग्रन्थों का मत है कि हवन के द्वारा भूमि में अन्न के उपज की शक्ति अत्यन्त बढ़ती है। होम से हानिकारक कीटाणुओं का नाश होता है, वायु शुद्ध होती है, जल शुद्ध होता है। शरीर की जीवन धारणाशक्ति अर्थात् प्राणशक्ति (Vitality) बढ़ती है। रोग करके कीटाणुओं के नष्ट हो जाने से रोग भी नष्ट हो जाते हैं। वृष्टि के परिमित करने में हवन बड़ा सहायक है।

हवन की प्रारम्भिक विधि सामान्य प्रकरण में आगे वर्णित है यह दैनिक यज्ञ दो भागों में विभक्त है—(१) जो प्रातःकाल के हवन मन्त्रों और (२) जो सायंकाल के हवन मन्त्रों से किया जाता है। वे मन्त्र ये हैंः—

प्रातःकाल के मन्त्र

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।

यजु० ३ । ६ ॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्र वत्या जुषाणः सूर्योवेतु स्वाहा ॥ यजु० ३ । १० ॥

( सूर्यः ) सकलोत्पादक ही ( ज्योतिः ) जिससे प्रकाश किया जाता है वा जो स्वयं प्रकाशमान सर्वावभासक है । ( ज्योतिः सूर्यः ) सर्वावभासक ही सर्वोत्पादक है (स्वाहा) उसही के आज्ञा पालनार्थ सारे संसार के उपकार के लिये यह आहुतिं देते हैं ॥१॥

(सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा) सर्वोत्पादक ही वर्चस् अर्थात् ज्ञान सर्वरूप दीप्ति वाला सर्वावभासक है तदर्थ ही आहुति है । ( ज्योतिः सू० ) स्वयं प्रकाशमान सर्व जगत्प्रकाशक सूर्य जगदीश्वर है तदाज्ञा स्वरूप ही आहुति है ।

( देवेन सवित्रा ) प्रकाश सर्वोत्पादक के साथ (सजूः०)तुल्य प्रीति से सम्मिलित होते हुए ( इन्द्रवत्या उपसा सजूः० ) ऐश्वर्यवान् प्रातःकाल के साथ

मिलते हुए ( जुषाणः सूर्यः वेतु ) प्रीतिपूर्वक वर्तमान सूर्य प्राप्त हो। एतदर्थ तदाज्ञापालन स्वरूप यह आहुति है।

सायंकाल के मन्त्र।

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।

ॐ अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।

ॐ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणः अग्निर्वेतु स्वाहा। यजु० ३। ९। ३। १॥

इन मन्त्रों का अर्थ पूर्ववत् ही है। केवल अग्नि शब्द का अर्थ ज्ञानस्वरूप प्राप्तियोग्यादि और रात्रि शब्द का अर्थ अन्धकार, सायंकाल, रात है।

प्रातः सायं दोनों समय के मन्त्र

ॐ भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदं न मम॥

ॐ भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवे अपानाय इदं न मम॥

ॐ स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इद-मादित्याय व्यानाय इदं न मम।

ॐ भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणा-पानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य इदं न मम।

ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा।

अर्थ—(प्राणाय) जीवनप्रद के लिये। (वायवे) बलवान् के लिये। (अपानाय) दुःखनाशक। (आदित्याय) अविनाशी के लिये। (व्यानाय) सुखस्वरूप के लिये। (अग्नये) प्रकाशस्वरूप के लिये॥ (शेष पूर्ववत्)

(आपः ज्योतिः रसः अमृतम्) सर्वव्यापक प्रकाशमान साररूप अमर। (ब्रह्म, भूः भुवः स्वः) सब से बड़ा सच्चिदानन्द। (ओ३म्) ॐ संज्ञक है। (स्वाहा) उसी के आदेशस्वरूप आहुति है।

ॐ यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।

तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥
यजु० ३२ । १४ ॥

( अग्ने ) हे ज्ञानस्वरूप । (यां मेधां देवगणाः) जिस बुद्धि को देवताओं का समूह । ( च पितरः उपासते ) और पितृगण उपासना करते हैं अर्थात् चाहते हैं । (तया मेधया अद्य माम् मेधाविनम् कुरु) उस बुद्धि से आज मुझको बुद्धियुक्त करो ।

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥ यजु० ३० । १ ॥

ॐ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥ यजु० ४० । १६ ॥

इन दोनों मन्त्रों का अर्थ पहिले लिखा जाचुका है ।

## पूर्णाहुति

ॐ सर्वम् वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥

( ॐ ) ईश्वर की कृपा से । ( सर्वम् वै पूर्णम् ) सब ही पूर्ण [होता है] ।

यहां पर ही प्रणीता पात्रस्थ घृत जितना कुछ हो अग्नि में प्रक्षेप कर देवे। तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र से उस अग्नि का सेवन करे।

ओं तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि।
ओं आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि॥
ओं वर्चोदा अग्नेसि वर्चो मे देहि।
ओं अग्ने यन्मे तन्व ऊनं तन्म आपृण॥ पार० गृ०॥

(अग्ने तनूपाः असि) हे ज्ञानस्वरूप आप शरीर के रक्षक हैं। (मे तन्वम् पाहि) आप मेरे शरीर की रक्षा कीजिये। (अग्ने आयुः- दाः असि) हे ईश्वर आप अवस्था को देने वाले हैं। (मे आयुः देहि) मुझे आयु दीजिये। (अग्ने वर्चो—दाः असि) हे ईश्वर आप दीप्ति के दाता हैं। (मे वर्चः देहि) मुझे दीप्ति दीजिये। (अग्ने यत् मे तन्व ऊनम्) हे ईश्वर जो कुछ मेरे शरीर में कमी है। (तत् मे आपृण) उसकी पूर्ति कर दीजिये।

इस प्रकार हवन की समाप्ति कर अन्त में यथावकाश ईश्वर-भक्ति के भजन गाने चाहियें।

## ( १ ) ईश्वर की स्तुति

जय जय पिता परम आनन्द दाता ।

जगदादिकारण मुक्ति-प्रदाता ॥ १ ॥

अनन्त और अनादि विशेषण हैं तेरे ।

सृष्टि का स्रष्टा तू धर्त्ता संहर्ता ॥ २ ॥

सूक्ष्म से सूक्ष्म, तू है स्थूल इतना ।

कि जिसमें यह ब्रह्माण्ड सारा समाता॥३॥

मैं लालित व पालित हूं पितृ-स्नेह का

यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझसे ताता ॥४॥

करो शुद्ध निर्मल मेरे आत्मा को ।

करूं मैं विनय नित्य सायं व प्रातः ॥५॥

मिटाओ मेरे भय को आवागमन के ।

फिरूँ ना जन्म पाता और बिलबिलाता॥६॥

बिना तेरे है कौन दीनन का बन्धू ।

कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता॥७॥

अमी रस पिलाओ कृपा करके मुझको ।

रहूँ सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता ॥ ८ ॥

## (२) ईश्वर स्मरण

विश्वपति के ध्यान में जिसने लगाई हो लगन।
क्यों न हो उसको शान्ति,
क्यों न हो उसका मन मगन ॥ १ ॥

काम क्रोध लोभ मोह, शत्रु हैं सब महाबली।
इनके हनन के वास्ते,
जितना हो तुझसे कर यतन ॥ २ ॥

ऐसा बना स्वभाव को, चित्त की शान्ति से तू।
पैदा न हो ईर्षा की आंच,
दिल में करे कहीं जलन ॥ ३ ॥

मित्रता सब से मन में रख, त्याग के वैर भाव को।
छोड़ दे टेढ़ी चाल को,
ठीक कर अपना तू चलन ॥ ४ ॥

जिससे अधिक न है कोई, जिसने रचा है यह जगत्।
उसका ही रख तू आश्रय,
उसकी ही तू पकड़ शरण ॥ ५ ॥

छोड़ के राग द्वेष को, मन में तू उसका ध्यान कर।
तुझ पै दयाल होवेंगे,
निश्चय है यह परमात्मन् ॥ ६ ॥
आप दयास्वरूप हैं, आप ही का आश्रय।
कृपा दृष्टि कीजिये मुझ पै।
हो जब समय कठिन ॥ ७ ॥
मन में मेरे हो चांदना, मोक्ष का रस्ता मिले।
मार के मन जो 'केवला'
इन्द्रियों को करें दमन ॥ ८ ॥

## ( ३ ) ईश-विनय

ओ३म् जय जगदीश हरे पिता जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के संकट क्षण में दूर करें ॥ ओ३म् जय०॥
जो ध्यावे, फल पावे, दुख विनशे मन का।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥ ओ३म् जय०॥
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूं किसकी।
तुम बिन और न कोई, आस करूं जिसकी ॥ ओ३म् जय०॥
तुम पूरण परमातम तुम अन्तर्यामी।
परम ब्रह्म परमेश्वर! तुम सब के स्वामी ॥ ओ३म् जय०॥

तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्त्ता ।
मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भरता ॥ ओ३म् जय०॥
तुम हो एक अगोचर, सब के प्राणपती ।
किस विधि मिलूं दयामय तुमको मैं कुमती॥ ओ३म् जय०॥
दीनबन्धु दुखहर्त्ता तुम रक्षक मेरे ।
करुणाहस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे ॥ ओ३म् जय०॥
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा ।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा ॥ ओ३म् जय० ॥

———०———

[ ४ ग ]

## बलिवैश्वदेव

यदन्नं पक्वमक्षारलवणं भोजनार्थं भवे-त्तेनैव बलिवैश्वदेवकर्मकार्यम् ।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥
मनु० अ० ३ । श्लो० ८४ ॥

अथ बलिवैश्वदेव कर्मणि प्रमाणम्

ओं अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते

घासमग्ने । रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १ ॥

अथर्व० का ६ । अनु० ७ । मं० ७ ॥

ॐ पुनन्तु मा देव जनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥२॥

य० अ० १६ । मं० ३६ ॥

भावार्थ—(पुनंतु०) इसका अर्थ देव-तर्पण विषय में कर दिया है । (अहरहर्बलि०)हे अग्ने परमेश्वर आपकी आज्ञा से नित्यप्रति बलिवैश्वदेव कर्म करते हुए लोग ( रायस्पोषेण समिषा ) चक्रवर्ती राज्यलक्ष्मी घृत दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों की प्राप्ति और सम्यक् शुद्ध इच्छा से ( मदंतः ) नित्य आनन्द में रहें । तथा माता पिता आचार्य आदि की उत्तम पदार्थों से नित्य प्रीतिपूर्वक सेवा करते रहें । ( अश्वायेव तिष्ठते घासं० ) जैसे घोड़े के सामने बहुतसा खाने वा पीने के पदार्थ धर दिये जाते हैं वैसे सब की सेवा के लिये बहुतसे उत्तम २ पदार्थ देवें, जिनसे वे

प्रसन्न हो के हम पर नित्य प्रसन्न रहें। ( मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ) हे परमगुरु अग्नि परमेश्वर ! आप और आपकी आज्ञा से विरुद्ध व्यवहारों में हम लोग कभी प्रवेश न करें और अन्याय से किसी प्राण को पीड़ा न पहुँचावें, किन्तु सबको अपना मित्र और अपने को सबका मित्र समझ कर परस्पर उपकार करते रहें।

---o---

## अथ होममंत्राः

ओं अग्नये स्वाहा। ओं सोमाय स्वाहा। ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओं अनुमत्यै स्वाहाः। ओं प्रजापतये स्वाहा। ओं सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ओं स्विष्टकृते स्वाहा॥

भावार्थ—(ओम०) अग्नि शब्दार्थ कह आये हैं। (ओं सो०) जो सब पदार्थों को उत्पन्न और पुष्ट करने से सुख देने हारा है उसको 'सोम' कहते हैं। (ओमग्नि०) जो प्राण सब प्राणियों के जीवन का हेतु और

अपान अर्थात् दुःख के नाश का हेतु है इन दोनों को 'अग्नी षोम' कहते हैं। ( ओं० वि० ) यहां संसार को प्रकाश करनेवाले ईश्वर के गुण अथवा विद्वान् लोगों का 'विश्वेदेव' शब्द से ग्रहण होता है। (ओं ध०) जो जन्म-मरणादि रोगों का नाश करने द्वारा परमात्मा वह धन्वन्तरि कहाता है। (ओं कु०) जो अमावास्येष्टि का करना है। (ओं म०) जो पौर्णमास्येष्टि वा सर्वशास्त्रप्रतिपादित परमेश्वर की चितिशक्ति है यहाँ उसका ग्रहण है। (ओं प्र०) जो सब जगत् का स्वामी जगदीश्वर है वह प्रजापति कहाता है। ( ओं स० ) यह प्रयोग पृथिवी का राज्य और सत्य विद्या के प्रकाश के लिये। ( ओं० स्वि० ) जो इष्ट सुख करने द्वारा परमेश्वर है वही स्विष्टकृत कहाता है। ये दश अर्थ दश मंत्रों के हैं अब बलिदान के मन्त्रों को लिखते हैं।

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। ओं सानुगाय वरुणाय नमः। ओं सानुगाय सोमाय नमः।

ओं मरुद्भ्यो नमः । ओं सद्भ्यो नमः । ओं वनस्पतिभ्यो नमः । ओं श्रियै नमः । ओं भद्रकाल्यै नमः । ओं ब्रह्मपतये नमः । ओं वास्तुपतये नमः । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः । ओं सर्वात्मभूतये नमः । ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥

भावार्थ —(ओं सा०) जो सर्वैश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर और जो उसके गुण हैं वे 'सानुग इन्द्र' शब्द से ग्रहण होते हैं । ( ओं सा० ) जो सत्य न्याय करने वाला ईश्वर और उसकी सृष्टि में सत्य न्याय के करने वाले सभासद् हैं वे 'सानुग' इन्द्र शब्द से ग्रहण होते हैं । ( ओं सा० ) जो सब से उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्त हैं वे 'सानुग वरुण' शब्दार्थ से जानने चाहियें । (ओं सा०) जो पुण्यात्माओं को आनन्दित करने वाला और जो पुण्यात्मा लोग हैं वे 'सानुग सोम' शब्द से ग्रहण किये हैं । (ओं मरु०) जो प्राण

अर्थात् जिनके रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है। उनको 'मरुत्' कहते हैं। इनकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। ( ओं सद्भ्यो० ) इसका अर्थ (शन्नो देवी०) इस मंत्र के अर्थ में लिखा है। ( ओं व० ) जिनसे वर्षा अधिक होती और जिनके फलादि से जगत् का उपकार होता है उनकी भी रक्षा करनी योग्य है। ( ओं श्रि० ) जो सबके सेवा करने योग्य परमात्मा है उसकी सेवा से राज्यश्री की प्राप्ति के लिये सदा उद्योग करना चाहिये। ( ओं भद्र० ) जो कल्याण करने वाली परमात्मा की शक्ति अर्थात् सामर्थ्य है उसका सदा आश्रय करना चाहिये। ( ओं ब्र० ) जो वेद का स्वामी ईश्वर है उसकी प्रार्थना और उद्योग विद्याप्रचार के लिये अवश्य करना चाहिये। जो ( ओं वा० ) वास्तुपति, गृह सम्बन्धी पदार्थों का पालन करने द्वारा मनुष्य अथवा ईश्वर है इनका सहाय सर्वत्र होना चाहिये।

( ओं विश्वे० ) इसका अर्थ कह दिया है। ( ओं

दिवा० ) जो दिन में विचरने वाले प्राणियों से उप-कार लेना और उनको सुख देना है सो मनुष्य जाति ही का काम है। ( ओं नक्तं ) जो रात्रि में विचरने वाले प्राणी हैं उनसे भी उपकार लेना और उन्हें सुख देना है इसलिये यह प्रयोग है। ( ओं सर्वात्म० ) सब व्याप्त परमेश्वर की सत्ता को ध्यान में रखना चाहिए। ( ओं० पि० ) माता पिता आचार्य अतिथि पुत्र भृत्यादिकों को भोजन कराके पश्चात् गृहस्थ को भोजन करना चाहिये। 'स्वाहा' शब्द का अर्थ पूर्व कर दिया है और 'नमः' शब्द का अर्थ आप अभिमान रहित होकर दूसरे का मान करना है।

इसके पीछे के भागों को लिखते हैं ॥

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥

भावार्थ—कुत्तों, कङ्गालों, कुष्ठी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग अलग बांट के दे देना और उनकी

प्रसन्नता सदा करना यह वेद और मनुस्मृति की रीति से बलिवैश्वदेव की विधि लिखी।

[ ४ घ ]

## पितृयज्ञ

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥
य० अ० १९। मं० ३९ ॥

द्वयं वाऽइदं न तृतीयमस्ति। सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति॥

स वै सत्यमेव वदेत्। एतद्धि वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मात्ते यशो यशो ह भवति य एवं विद्वान्त्सत्यं वदति ॥ शत० कां० १। अ० १। ब्रा० १। कं० ४। ५ ॥

विद्वाꣳसो हि देवाः ॥ शत० कां० ३। अ० ७। ब्रा० ६। कं० १० ॥

भावार्थ—अब तीसरा पितृयज्ञ कहते हैं।

उसके दो भेद हैं एक तर्पण, दूसरा श्राद्ध। तर्पण उसे कहते हैं जिस कर्म से विद्वान् रूप देव, ऋषि और पितरों को सुख युक्त करते हैं। उसी प्रकार जो उन लोगों का श्रद्धा से सेवन करना है सो श्राद्ध कहाता है। यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता है, मृतकों में नहीं। क्योंकि उनकी प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना दुर्लभ है। इसी से उनकी सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती। किन्तु जो उनका नाम लेकर देवें वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता इसलिये मृतकों को सुख पहुंचाना सर्वथा असम्भव है। इसी कारण विद्यमानों के अभिप्राय से तर्पण और श्राद्ध वेद में कहा है। सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करने वाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम हो सकता है। तर्पण आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन हैं। देव, ऋषि और पितर उनमें से देवों में प्रमाण-(पुनन्तु०) हे जातवेदः! परमेश्वर!

आप सब प्रकार से मुझे पवित्र करें। जिनका चित्त आप में है तथा जो आपकी आज्ञा पालते हैं वे विद्वान् श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष भी विद्या दान से मुझको पवित्र करें ( जिनका ) चित्त आप में है। उसी प्रकार आपका दिया जो ज्ञान व आपके विषय का ध्यान उससे हमारी बुद्धि पवित्र हों ( पुनन्तु विश्वा भूतानि ) और संसार के सब जीव आपकी कृपा से पवित्र और आनन्दयुक्त हों। ( द्वयं वा० ) दो लक्षणों से मनुष्यों की दो संज्ञा होती हैं अर्थात् देव और मनुष्य। वहां सत्य और झूठ दो कारण हैं। ( सत्यमेव० ) जो सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य कर्म करने वाले हैं वे 'देव' हैं और वैसे ही झूठ बोलने, झूठ मानने और झूठ कर्म करने वाले मनुष्य कहाते हैं। जो झूठ से अलग हो के सत्य को प्राप्त होवें वे देवजाति में गिने जाते हैं। और जो सत्य से अलग होके झूठ को प्राप्त हों वे मनुष्य असुर और राक्षस कहे हैं इससे सब काल में सत्य

ही कहे, माने और करे । सत्य व्रत का आचरण करने वाला मनुष्य यशस्वियों में यशस्वी होने से देव और उससे उलटे कर्म करने वाला असुर होता है । इस कारण से यहां विद्वान् ही देव हैं ।

अथर्षिप्रमाणम्

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥

यजु० अ० ३१ । मं० ६ ॥

अथ यदेवानुब्रुवीत । तेनर्षिभ्य ऋणं जायते तद्धेतेभ्य एतत्करोत्यृषीणां निधिगोपा इति ह्यनूचानमाहुः॥ शत०कां० १।अ० ७ कं०।३॥

अथार्षेयं प्रवृणीते । ऋषिभ्यश्चैवैनमेतद्देवेभ्यश्च निवेदयत्ययं महावीर्यो यो यज्ञं प्रापदिति तस्मादार्षेयं प्रवृणीते ॥ शत० कां० १ । प्रपा० ३ । अ० ४ । कं० ३ ॥

भावार्थ—जो सब से प्रथम प्रकट था जो सब जगत् का बनाने वाला और जगत् में पूर्ण हो रहा

है उस यज्ञ अर्थात् पूजने योग्य परमेश्वर को हृदय रूप आकाश में अच्छे प्रकार से प्रेम, भक्ति, सत्य आचरण करके पूजन करता है वही मनुष्य है। ईश्वर का यह उपदेश सब के लिये है उसी परमेश्वर के वेदोक्त उपदेशों से जो विद्वान्, ज्ञानी व ऋषि लोग, वेद मंत्रों के अर्थ जानने वाले और अन्य भी जो मनुष्य परमेश्वर के सत्कार पूर्वक सब अच्छे ही काम, करते हैं वे सुखी होते हैं।

अब इसके बाद सब विद्याओं को पढ़के जो पढ़ाना है वह 'ऋषि कर्म' कहाता है और उसके पढ़ने और पढ़ाने से ऋषियों का ऋण अर्थात् उनको उत्तम उत्तम पदार्थ देने से निवृत्त होता है और जो उन ऋषियों की सेवा करता है वह उनको सुख करने वाला होता है। (निधिगोपाः) यही व्यवहार अर्थात् विद्या कोष का रक्षा करने वाला होता है। जो सब विद्याओं को जान के सब को पढ़ाता है उसको 'ऋषि' कहते हैं। ( अथार्षेयं प्रवृणीते० ) जो पढ़के पढ़ाने

के लिये विद्यार्थी का स्वीकार करना है सो 'आर्षेय' अर्थात् ऋषियों का कर्म कहाता है। जो उस कर्म को करते हैं उन ऋषियों और देवों के लिये प्रसन्न करने वाले पदार्थों का निवेदन तथा सेवा करता है वह विद्वान् अति पराक्रमी होके विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। जो विद्वान् और विद्या को ग्रहण करने वाला है उसका 'ऋषि' नाम होता है इस कारण इस आर्षेय कर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें।

अथ पितृषु प्रमाणम्

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ॥ स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥

यजु० अ० २। मं० ३४ ॥

भावार्थ—( ऊर्जं वहन्ती० ) पिता व स्वामी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री वा नौकरों को सब दिन के लिये आज्ञा देके कहें कि ( तर्पयत मे पितॄन् ) जो पिता पितामह आदि, माता मातामह आदि तथा आचार्य और इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग अवस्था अथवा ज्ञान

से वृद्ध, मान करने योग्य हों उन सब के आत्माओं को यथायोग्य सेवा से प्रसन्न किया करो। सेवा करने के पदार्थ ये हैं। ( ऊर्जं वहन्ती० ) जो उत्तम २ जल ( अमृतम् ) अनेक विध रस ( घृतं ) घी ( पयः ) दूध ( कीलालं ) अनेक संस्कारों से सिद्ध किये रोग नाश करने वाले उत्तम २ अन्न ( परिस्रुतम् ) सब प्रकार के उत्तम २ फल हैं इन सब पदार्थों से उनकी सेवा सदा करते रहो जिससे उनका आत्मा प्रसन्न हो के तुम लोगों को आशीर्वाद देता रहे, कि जिससे तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहो। (स्वधा स्थ०) हे पूर्वोक्त पितृ लोगो! तुम सब हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से सदा सुखी रहो। और जिस २ पदार्थ की तुमको अपने लिये इच्छा हो जो २ हम लोग कर सकें उस २ की आज्ञा सदा करते रहो। हम लोग मन वचन से तुम्हारे सुख करने में स्थित हैं। तुम लोग किसी प्रकार का दुःख मत पाओ। जैसा तुम लोगों ने बाल्यावस्था और

ब्रह्मचर्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है वैसे हमको भी आप लोगों का प्रत्युपकार करना अवश्य चाहिये जिससे हमको कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो ॥ १ ॥

अथ पितृणां परिगणनम्

येषां पितृसंज्ञा ये सेवितुं योग्याश्च ते क्रमशो लिख्यन्ते । सोमसदः । अग्निष्वात्ताः । बर्हिषदः । सोमपाः । हविर्भुजः । आज्यपाः । सुकालिनः । यमराजाश्चेति ।

भावार्थः—जो ईश्वर सोमयज्ञ में निपुण और जो शान्ति दमादि गुण सहित हैं वे 'सोमसद्' कहाते हैं। ( अ० ) अग्नि जो परमेश्वर वा भौतिक उनके गुण ज्ञान करके जिन्होंने अच्छे प्रकार अग्निविद्या सिद्ध की है उनको 'अग्निष्वात्त' कहते हैं । ( ब० ) जो सब से उत्तम परब्रह्म में स्थिर हो के शम दम सत्य विद्यादि उत्तम गुणों में वर्त्तमान हैं उनको 'बर्हिषद्' कहते हैं। ( सो० ) जो यज्ञ करके सोमलता आदि उत्तम ओषधियों के रस के पान करने और

कराने वाले हैं। तथा जो सोम विद्या को जानते हैं उनको 'सोमपा' कहते हैं। ( ह० ) जो अग्निहोत्रादि यज्ञ करके वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा सब जगत् का उपकार करते और जो अन्न जलादि को शुद्ध करके खाने पीने वाले हैं उनको 'हविर्भुज्' कहते हैं। ( आ० ) घृत स्निग्ध पदार्थ और विज्ञान को आज्य कहते हैं जो उसके दान से रक्षा करने वाले हैं उनको 'आज्यपा' कहते हैं। ( सु० ) मनुष्य-शरीर को प्राप्त होकर ईश्वर और सत्यविद्या के ग्रहण और सदा उपदेश में ही जिनका श्रेष्ठ समय वर्त्तमान है उनको 'सुकालिन' कहते हैं। ( य० ) जो पक्षपात को छोड़ के सदा सत्य व्यवस्था, न्याय ही करने में रहते हैं उनको 'यमराज' कहते हैं।

पितृपितामहप्रपितामहाः। मातृपितामही-प्रपितामह्यः सगोत्राः सम्बंधिनः।

जो वीर्य के निषेकादि कर्मों करके उत्पत्ति और पालन करे और चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य आश्रम

से विद्या को पढ़े उसका नाम 'पिता' और 'वसु' है। (पिता०) जो पिता का पिता हो और चालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य आश्रम से विद्या पढ़ के सब जगत् का उपकार करता हो उसको 'प्रपितामह' और और 'आदित्य' कहते हैं तथा जो पित्रादिकों के तुल्य पुरुष हैं उनको भी पित्रादिकों के तुल्य सेवा करनी चाहिये। (मा०) पित्रादिकों के समान विद्या स्वभाव वाली स्त्रियों की भी अत्यन्त सेवा करनी चाहिये। (सगो०) जो समीपवर्त्ती ज्ञाति के योग्य पुरुष हैं वे भी सेवा करने के योग्य हैं। (आचार्यादि सं०) जो पूर्ण विद्या के पढ़ाने वाले और श्वशुरादि सम्बन्धी तथा उनकी स्त्री हैं उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।

जो सोमसदादि पितर विद्यमान अर्थात् जीवित हों उनका प्रीति से सेवनादि से तृप्त करना तर्पण और श्रद्धा से अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सेवन करना है सो 'श्राद्ध' कहाता है। जो मत्य विज्ञानदान से जनों

को पालन करते हैं वे 'पितर' हैं। इस विषय में प्रमाण—"ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः"। इत्यादि मंत्र सोमसदादि सातों पितरों में प्रमाण हैं। "समानाः समनसः पितरो यमराज्ये।" इत्यादि मंत्र यमराजों। "पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।" इत्यादि मंत्र पितृ-पितामह प्रपितामहादिकों तथा "नमो वः पितरो रसायेत्यादि" मंत्र पितरों की सेवा और सत्कार में प्रमाण हैं। ये ऋग्यजुर्वेद आदि के वचन हैं और मनुजी ने भी कहा है कि पितरों को वसु, पितामहों को रुद्र और प्रपितामहों को आदित्य कहते हैं, यह सनातन श्रुति है। मनु० अ० ३। श्लोक २८४।

इति पितृयज्ञविधिः

[ ४ ङ ]

## अतिथियज्ञः

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्। स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य

यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते निकाम-स्तथास्त्विति ॥ अथर्व० का० १५ । व० ११ । अ० २ । मं० १-२ ॥

अब जो पांचवां अतिथि यज्ञ कहाता है उसको लिखते हैं जिसमें अतिथियों की यथावत् सेवा करनी होती है। जो पूर्ण विद्वान् परोपकारी जितेन्द्रिय धार्मिक सत्यवादी छल कपट रहित नित्य भ्रमण करने वाले मनुष्य होते हैं उनको 'अतिथि' कहते हैं। इसमें अनेक वैदिक मंत्र प्रमाण हैं, परन्तु यहाँ संक्षेप के लिये दो ही मंत्र लिखते हैं। ( तद्यस्यैवं विद्वान् ) जिसके घर में पूर्वोक्त गुणयुक्त विद्वान् ( व्रात्यः ) उत्तम गुण विशिष्ट सेवा करने के योग्य अतिथि आवे जिसकी आने जाने की कोई भी निश्चित तिथि न हो अकस्मात् आवे और जावे जब ऐसा मनुष्य गृहस्थों के घर में प्राप्त हो ॥ १ ॥ ( स्वयमेनम० ) तब उसको गृहस्थ अत्यन्त प्रेम से उठ कर नमस्कार करके उत्तम आसन पर बैठा के

पश्चात् पूछे कि आप को जल वा किसी अन्य वस्तु की इच्छा हो सो कहिये इस प्रकार उसको प्रसन्न कर और स्वयं स्वस्थ चित्त होके उससे पूछे कि ( व्रात्य क्वावात्सीः ) हे व्रात्य, उत्तम पुरुष ! आपने यहाँ आने के पूर्व कहाँ वास किया था । (व्रात्योदकं) हे अतिथि ! यह जल लीजिये । ( व्रात्य तर्पयन्तु ) और हम लोग अपने सत्य प्रेम से आप को तृप्त करते हैं और सब हमारे इष्ट मित्र लोग आपके उपदेश विज्ञान युक्त हो के सदा प्रसन्न हों । ( व्रात्य यथा० ) हे विद्वान् व्रात्य ! जिस प्रकार से आपकी प्रसन्नता हो वैसा ही हम लोग काम करें और जो पदार्थ आपको प्रिय हो उसकी आज्ञा कीजिये । ( व्रात्य यथा० ) जिस प्रकार से आपकी कामना पूर्ण हो वैसी आपकी सेवा हम लोग करें जिससे आप और हम लोग परस्पर सेवा और सत्संग पूर्वक विद्या वृद्धि से सदा आनन्द में रहें ॥ २ ॥

इति संक्षेपतोऽतिथियज्ञः ।

## [ ५ ]
## व्यायाम

१० वर्ष तक के बालक और बालिकाओं को अच्छी हवा में, जहां धूलि और धुआं फैले हुए न हों, दौड़ना चाहिये और अभ्यास करना चाहिये कि किसी स्थान विशेष पर इतने चक्कर लगावें जिससे जिनकी लंबाई लगभग एक मील के हो जावे क्रमशः यह अभ्यास एक फर्लांग से शुरु करके एक मील तक बढ़ा लेना चाहिये।

( २ ) १० वर्ष से अधिक आयु वाले दो प्रकार के व्यायाम करें:—

( १ ) दण्ड और बैठक या—
( २ ) मुगदर या डम्बिल और बैठक
( ३ ) शीर्षासन

पहले व्यायाम के तीन रूपों में से जो कोई भी व्यायाम किया जावे उसका ऐसा नियम ( संख्या की दृष्टि से ) कर लिया जावे कि फिर उससे कभी

कम न हो और वह नियम ऐसा होना चाहिये जिस से व्यायाम करते २ शरीर में खूब गरमी और श्वास में खूब वेग आजावे, व्यायाम करते समय श्वास रोक रोक कर-खूब गहरे श्वास लेने चाहियें।

शीर्षासन एक मिनिट से शुरू करके १० मिनट तक करना काफ़ी है।

( ३ ) जिनकी आयु या अवस्था ( रोगादि के कारण ) ऐसी हो कि व्यायाम न कर सकें उन्हें नगर से बाहर जाकर वायु सेवन करना चाहिये और कम से कम ५ मील की सैर कर लेनी चाहिये और चलते हुये श्वास रोक २ कर लेना चाहिये। व्यायाम के बाद तत्काल कढ़ा हुआ गर्म २ दूध या देर का कढ़ा हो तो गर्म करके पीना स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभदायक है। बालक बालिकाओं और नवयुवक नवयुवतियों के लिये चाय हानिकारक है। उन्हें प्रत्येक प्रकार के नशों से, जिसमें तम्बाकू का खाना, पीना और सूंघना भी शामिल है, बचना चाहिये।

[ ६ ]

## प्राणायाम

प्राणायाम से शारीरिक उन्नति किस प्रकार होती है इस बात के जानने के लिये एक दृष्टि शरीर के अन्दर होने वाले अनिच्छित कार्यों में से हृदय और फेफड़े के कार्यों पर डालनी होगी।

### हृदय का स्थूल कार्य

इस शरीर में दो प्रकार की अतिसूक्ष्म नलियां हैं एक तो वे जो समस्त शरीर से हृदय में आती हैं और दूसरी नलियां वे हैं जो हृदय से समस्त शरीर में जाया करती हैं। पहली नलियां "शिरा" और दूसरी "धमनी" कहलाती हैं।

शिराओं का काम यह है कि समस्त शरीर से अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिये हृदय में लाया करें। हृदय उस रक्त को शुद्ध करता है और शुद्ध करके शुद्ध रक्त को धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में भेज दिया करता है। रक्त अशुद्ध क्यों होता है? इसका

हेतु यह है कि समस्त शरीर के व्यापारों में उसका प्रयोग होता है और उपयोग में आने से अशुद्ध हो जाता है।

## शुद्ध और अशुद्ध रक्त का भेद

शुद्ध रक्त में कुछ चमक लिये हुए अच्छी सुर्खी होती है, परन्तु जब यह अशुद्ध हो जाता है तो उस में कुछ मैलापन आजाता है। शुद्ध रक्त में ओपजन (Oxygen) काफ़ी मात्रा में रहता है, परन्तु काम में आने से जब यह अशुद्ध हो जाता है तब उसमें ओपजन की मात्रा नाममात्र रह जाती है और उसकी जगह एक विषैली वायु (Carbonic Acid gas) रक्त में आ जाती है और इसी परिवर्तन से रक्त का रङ्ग मैला, स्याही माइल हो जाता है।

## फेफड़े का काम

हृदय में जब अशुद्ध रक्त शिराओं के द्वारा पहुंचता है तो हृदय उसे फेफड़े में भेजता है, यहीं से फेफड़े का काम शुरू होता है। फेफड़ा स्पंज की

भाँति असंख्य छोटे २ घटकों (सेल्स) का समुदाय है। एक शरीर में वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि यदि लम्बाई चौड़ाई में फेफड़े के इन कणों (घटकों) को फैला दिया जावे तो उनका विस्तार १२ हज़ार वर्गफीट होगा। वे कण एक मांसपेशी (डायफ्राम) की चाल से खुलते और बन्द होते रहते हैं। जब ये कण खुलते हैं तब एक ओर से तो हृदय से अशुद्ध रक्त और दूसरी ओर से श्वास के द्वारा लिया हुआ शुद्ध वायु दोनों मिलकर उन्हें भर देते हैं। अब इन कणों में इस प्रकार से अशुद्ध रक्त और शुद्ध वायु दोनों एकत्र हो गए हैं। प्रकृति का एक विलक्षण नियम काम करता है। और वह नियम यह है कि जिसमें जो वस्तु नहीं होती वह उसी को दूसरे से अपनी ओर खींचती है। रक्त में तो शुद्ध वायु (ओषजन) नहीं है और श्वास के द्वारा लिये वायु में कार्बन वायु नहीं है इन दोनों में जब उपर्युक्त नियम काम करता है तो उसका

परिणाम यह होता है कि रक्त में से कार्बन वायु निकलकर श्वास के वायु में और श्वास के द्वारा आये हुए वायु में से ओपजन निकल कर रक्त में चला आता है। फल यह होता है कि रक्त इस प्रकार शुद्ध और श्वास के द्वारा आया हुआ वायु अशुद्ध हो जाता है। अब शुद्ध रक्त तो हृदय में जाकर धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में चला जाता है और अशुद्ध वायु निःश्वास के द्वारा बाहर निकल जाता है। यह कार्य प्रतिक्षण हुआ करता है।

## हृदय की धड़कन

हृदय की धड़कन क्या वस्तु है? एक बार हृदय से रक्त का शुद्ध होने के लिये फेफड़े में जाना और फेफड़े से शुद्ध होकर रक्त का हृदय में वापिस आना बस इन्हीं दोनों क्रियाओं से हृदय में एक धड़कन बनती है। औसतन एक मिनट में ७२ धड़कनें एक प्रौढ़ पुरुष के हृदय में हुआ करती हैं। विशेष अवस्थाओं में आयु के अन्तर से धड़कन की

मात्रा न्यूनाधिक हुआ करती है, आमतौर से एक सेकिंड से कम समय ही में एक बार रक्त शुद्ध होने के लिये फेफड़े में आता और शुद्ध होकर वापिस चला जाता है। एक शरीरवैज्ञानिक ने हिसाब लगाया है कि इस प्रकार २४ घंटे में २४२ मन रक्त हृदय से फेफड़े में आता है और इतना ही रक्त शुद्ध होकर फेफड़े से हृदय में वापिस चला जाता है। इस धड़कन की आवाज़ "लूब्-डप्" शब्दों के उच्चारण जैसी होती है। जब हृदय संकुचित होकर रक्त निकलता है तो "लूब्" के सदृश ध्वनि होती है और फैलकर जब रक्त ग्रहण करता है तो "डप्" शब्द की सी ध्वनि होती है। इन दोनों ध्वनियों में समय का कुछ अन्तर अवश्य होता है, परन्तु इतना थोड़ा कि दोनों शब्द मिले हुए से ही मालूम होते हैं और विशेषज्ञों के सिवाय साधारण लोग इस अन्तर को नहीं ख़याल कर सकते। अस्तु अब विचारणीय बात यह है कि—

## फेफड़े में शुद्ध वायु न पहुंचने का परिणाम

यदि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिये फेफड़े में जावे परन्तु श्वास के द्वारा पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुंचे अथवा सब कोषों ( कणों ) में, जहां रक्त पहुंच चुका है, शुद्ध वायु न पहुंचे तो उसका परिणाम क्या होगा ? फेफड़े के मुख्यतया तीन भाग हैं—(१) ऊपरी भाग जो प्रायः गर्दन तक है, ( २ ) मध्य भाग जो दोनों ओर हृदय के इधर उधर है, ( ३ ) निम्नभाग जो "डायेफ्राम" ( मांसपेशी ) के ऊपर दोनों ओर है। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है वह पूर्ण श्वास नहीं होता इसीलिये फेफड़े के सब भागों अथवा सब भागों के समस्त कोषों में नहीं पहुंचता। जब फेफड़े के ऊपरी भाग में श्वास द्वारा वायु नहीं पहुंचता तो ऊपरी भाग में फेफड़े का रोगी होना शुरू होता है और उसके इस

प्रकार त्रुटि-पूर्ण हो जाने से एक रोग हो जाता है जिसे तपेदिक या ट्यूबर क्यूलोसिस (Tuberculosis) कहते हैं और जब इसी प्रकार मध्य और निम्न भाग फेफड़ों के बेकार और त्रुटिपूर्ण होने लगते हैं तो उसके परिणाम में खांसी, दमा, निमोनिया, जीर्ण-ज्वर आदि अनेक रोग, जो फेफड़ों से सम्बन्धित हैं, होने लगते हैं इस प्रकार पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुंचने से जहां एक ओर फेफड़े से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं तो दूसरी ओर उसका एक परिणाम यह भी होता है कि हृदय से रक्त जो शुद्ध होने के लिये फेफड़े में आता है वह बिना-शुद्ध हुए अशुद्ध ही हृदय में वापिस चला जाता है। हृदय भी उसे रोक नहीं सकता वहां से वह धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में पहुंचता है इसका फल रक्त-विकार होता है रक्त के विकृत होने से मामूली रोग खाज (खुजली ख़ारिश) से लेकर भयङ्कर रोग कुष्ठ तक हो जाते है। इसलिये इन सब दुष्परिणामों से बचने के लिये

आवश्यक है कि फेफड़े शुद्ध वायु से पूरित होते रहें और कोई भी कण ( कोष ) उनका ऐसा न रहने पावे जहां वायु न पहुंच सके यहीं से प्राणायाम की ज़रूरत का सूत्रपात होता है ।

## प्राणायाम की आवश्यकता ।

प्राणायाम के द्वारा मनुष्य के भीतर जब वह श्वास बाहर रोक देता है तब श्वास लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है, उसका फल यह होता है कि श्वास भीतर लेते समय श्वास वेग के साथ तेज़ हवा या आंधी के सदृश होकर फेफड़े में पहुँचता है और जिस प्रकार आंधी या तेज़ हवा नगर के कोने २ में प्रवेश करती है इसी प्रकार वेग के साथ श्वास के द्वारा भीतर लिया हुआ वायु फेफड़ों के एक २ कोष तक पहुँच जाता है और उससे न तो फेफड़े ही में कोई खराबी होने पाती है और न रक्त ही में कोई विकार उत्पन्न होने पाता है। अस्तु देख लिया गया कि

प्राणायाम शारीरिक उन्नति का केवल हेतु ही नहीं किन्तु मुख्य हेतु है, इसलिए स्वस्थ रहने के लिए प्रत्येक नर नारी के लिए आवश्यक है कि वह प्राणायाम किया करे।

यह बात प्रकट हो जाने पर कि प्राणायाम मानसिक उन्नति के सिवा शारीरिक उन्नति का भी साधन है, प्राणायाम क्या है और किस प्रकार करना चाहिए? यह जानने की स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न होती है, परंतु यह बतलाने से पहले कतिपय उन साधनों का यहां उल्लेख किया जाता है जिन पर अमल करने से प्राणायाम की क्रियाओं में शीघ्रता से सफलता प्राप्त हो सकती है। अनेक सज्जन प्राणायाम करके शिकायत करते पाये गये हैं कि प्राणायाम करने से अमुक कष्ट होगया अथवा प्राणायाम करने से अमुक रोग होगया, परन्तु ये सब खराबियां जो कुछ भी हुई हों, प्राणायाम का परिणाम नहीं हो सकतीं किन्तु असावधानियों के फल हैं जो प्राणायाम करने में प्राणायाम

करने वाले प्रायः किया करते हैं। कोई क्रिया फलवती नहीं हो सकती जब तक विधिपूर्वक न की जावे। पथ्य के बिना जिस प्रकार चिकित्सा निष्फल सी होती है इस प्रकार अविधि से किया हुआ प्राणायाम भी लाभदायक नहीं हो सकता। अस्तु, उन साधनों का जानना आवश्यक है जिनके प्रयोग में लाने से वह परिस्थिति उपस्थित की जाती है जिसका होना प्राणायाम की सफलता के लिये आवश्यक है।

## प्राणायाम के उपयोगी साधन।

(१) उनमें से पहला साधन यह है कि अभ्यासी का मन शुद्ध हो, मन के शुद्ध होने के लिये शुद्ध अन्न का सेवन करना आवश्यक है। शुद्ध अन्न परिश्रम और ईमानदारी से कमाये हुए धन को कहते हैं, छल और कपट से कमाया हुआ अन्न खाकर कोई साधक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसे अन्न के प्रयोग से सदैव हृदय मलिन रहता है।

( २ ) यम और नियम का प्रतिदिन चिन्तन करना चाहिये और अपने किये हुये कार्यों में से जो भी कार्य इनके विरुद्ध हो उससे हृदय में ग्लानि उत्पन्न होनी चाहिये और ऐसे कार्यों के छोड़ने का सर्वदा यत्न करते रहना चाहिये ।

( ३ ) श्वास को नाक से लेने का अभ्यास करना चाहिये। कोई २ पुरुष मुँह से श्वास लिया करते हैं यह अभ्यास हानिकारक है ।

( ४ ) गहरा श्वास लेने की आदत डालनी चाहिये ।

( ५ ) मुँह ढक कर किसी ऋतु में भी नहीं सोना चाहिये। शुद्ध वायु श्वास के द्वारा फेफड़े तक पहुँचाने के लिये कम से कम नाक सदैव सोते हुए भी खुली रखनी चाहिये ।

( ६ ) प्राणायाम शुद्ध और शांत स्थान में करना चाहिये, जहां वायु में धूल या धुआं आदि हानिकारक वस्तुएं न शामिल हों ।

( ७ ) भोजन भूख से कुछ कम करना चाहिये, जिससे अजीर्ण न होने पावे।

( ८ ) रोगी होने की दशा में प्राणायाम का प्रारम्भ न करना चाहिये। इन साधनों पर दृष्टि रखने और इनके अनुकूल चलने से मनुष्य के हृदय में उस प्रकार के भाव जागृत हो जाते हैं जो प्राणायाम की सफलता के लिये आवश्यक हैं *। इन साधनों में से कुछ की आवश्यक व्याख्या पुस्तक के अन्तिम अध्याय में करदी गई है।

## प्राणायाम के मूल सिद्धान्त।

पतंजलि मुनि ने योगदर्शन से यम, नियम और आसन के सिद्ध कर लेने के बाद प्राणायाम का विधान किया है, इन तीनों अंगों से जहां

* शेष साधनों की सभी के लिये आवश्यकता है चाहे उनका उद्देश्य केवल शारीरिक उन्नति हो अथवा शारीरिक और मानसिक दोनों।

एक ओर शारीरिक उन्नति होती है वहां दूसरी ओर मानसिक उन्नति के भी ये साधक हैं। यम, नियम से मानसिक उन्नति होती है इसमें तो किसी को सन्देह नहीं हो सकता, परन्तु आसन से किस प्रकार मानसिक उन्नति होती है इसमें किन्हीं २ को सन्देह हो सकता है। परन्तु योगदर्शन में स्पष्ट रीति से कह दिया गया है कि आसन की सिद्धि से मनुष्य में यह योग्यता आजाती है जिससे वह द्वन्द्वों (सरदी गरमी आदि) का सहन कर सकता है * अब आसन की सिद्धि होने पर प्राणायाम के अभ्यास का प्रारम्भ होता है।

## प्राणायाम क्या है।

श्वास और प्रश्वास की गति रोकना प्राणायाम

* ततो द्वन्द्वाऽनभिघातः ॥ योग० २। ४८ ॥

अर्थात् उस आसन की सिद्धि से द्वन्द्वों की चोट नहीं लगती।

है * प्रश्वास भीतर से बाहर वायु निकालने को कहते हैं। इनकी गति रोकने का मतलब यह है कि श्वास को भीतर ले जाकर भीतर ही रोक देना, इसी प्रकार बाहर निकाल कर बाहर ही रोक देना। प्राणायाम शब्द दो शब्दों का योग है=प्राण+आयाम। प्राण श्वास और प्रश्वास का नाम है और आयाम का अर्थ है फैलाना या विस्तार करना। इसलिये प्राणायाम का अर्थ हुआ प्राणों का फैलाना अर्थात् श्वास प्रश्वास का निग्रह करके उनके रोकने की अवधि बढ़ाना।

## प्राणायाम के भेद।

प्राणायाम में तीन क्रियायें होती हैं—(१) प्राण का बाहर निकालना, इसको रेचक कहते हैं।

---

* तस्मिन्त्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः॥
योग २।४९॥

अर्थात् उस आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति रोकना प्राणायाम है।

( २ ) प्राण का भीतर लेना. इसका नाम पूरक है ।
( ३ ) प्राण जहां हो वहीं रोक देना, यह स्तम्भवृत्ति कहलाती है । यह प्राणायाम देश, काल और संख्या के भेद से ३ प्रकार का है * ।

( १ ) देशपरिदृष्ट–जिसमें थोड़ी दूर, अधिक दूर या अत्यन्त अधिक दूर का प्राण खींचा, भरा जावे ।

---

* स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिः देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ योग० २ । ५० ॥

अर्थात् बाह्य, आभ्यन्तर स्तम्भवृत्ति भेद से ३ प्रकार का प्राणायाम देश, काल और संख्या से देखा हुआ दीर्घ परन्तु सूक्ष्म होता है ।

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ योग० २ । ५१ ॥

अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर दोनों देशों में आक्षेप करने वाला अर्थात् जिसमें इन दोनों प्राणायामों (रेचक+पूरक) का परित्याग हो चौथा प्राणायाम है ।

( २ ) कालपरिदृष्ट—एक दो या अधिक क्षणों तक प्राणों का भरना, फेंकना या ठहराना।

( ३ ) संख्यापरिदृष्ट–एक, दो, तीन या अधिकवार प्राणों का फेंकना, भरना या ठहराना।

( ४ ) क्रिया प्राणायाम की कुंभक है, इस कुंभक और स्तम्भवृत्ति नामक प्राणायाम में अन्तर यह है कि स्तम्भवृत्ति में तो प्राण बाहर या भीतर खींचे बिना जहां का तहां रोक दिया जाता है, परन्तु कुंभक में प्राण को बाहर या भीतर खींचकर रोका जाता है।

बस, प्राणायाम के मूल सिद्धान्त ( या मूल क्रियायें ) यही हैं और इन्हीं के आधार पर प्राणायाम के अनेक विभाग किये गये हैं और उपयोगिता की दृष्टि से उन विभक्त प्राणायामों को पृथक् २ ठहराया गया है। यह ऋषियों की अपूर्व शैली का फल है कि तीन सूत्रों में प्राणायाम की समस्त क्रियायें वर्णन करदी गई हैं, परन्तु इस विद्या के अप्रचलित

हो जाने से देशवासी इस योग्य नहीं रहे कि इन्हीं सूत्रों को लक्ष्य में रखकर अभ्यास कर सकें अन्यथा इन पृष्ठों के लिखने की आवश्यकता ही नहीं थी, हम आगे बतलायेंगे कि किस प्रकार एक नये अभ्यासी को प्राणायाम का आरंभ करना चाहिये, परन्तु पहले एक प्रश्न का उत्तर देना चाहते हैं कि मानसिक उन्नति की दृष्टि से प्राणायाम क्यों करना चाहिये।

## प्राणायाम का फल।

प्राणायाम का फल यह है कि उसके अभ्यास से हृदय में पड़ा हुआ तम का आवरण नष्ट हो जाता है * हृदय में शुद्ध ज्ञान रहता है और रहना चाहिये परन्तु जब मनुष्य ऐसे कर्म करने लगता है जो काम, क्रोध, लोभ और मोह से उत्पन्न

---

* ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ योग०, २ । ५२ ॥
अर्थात् उस ( प्राणायाम साधन ) से प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाता है।

होते हैं और जो तमोगुण की वृद्धि का फल कहलाते हैं, तो ये कर्म हृदयस्थ शुद्धज्ञान रूपी प्रकाश को आवरण ( परदा ) होकर ढक लेते हैं अब यह ढका हुआ प्रकाश किस प्रकार उभड़े अथवा हृदय पर पड़ा हुआ तम का परदा किस प्रकार उठे? इसका साधन प्राणायाम का अभ्यास है। प्राणायाम के अभ्यास ही से उत्तरोत्तर अज्ञान तम का नाश और ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है * और जिस प्रकार अग्नि में तपाने से सुवर्ण आदि धातुओं का मल नष्ट हो जाता है † उसी तरह प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं।

---

* योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥
योग० २ । २८ ॥

अर्थात् योग के ( ८ ) अंगों के अनुष्ठान से अशुद्धि के क्षय होने पर, विवेकख्याति ( तत्वज्ञान ) पर्य्यन्त ज्ञान का प्रकाश होता है।

† दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।

## एक दूसरा फल।

प्राणायाम का एक दूसरा फल यह होता है कि इसके अभ्यास से मनुष्य में धारणा (चित्त के एकाग्र करने) की योग्यता होती है। * चित्त के एकाग्र होने से एक विद्यार्थी अपना पाठ सुगमता से समझ और याद कर सकता है। एक वैज्ञानिक सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों की परीक्षा करने में समर्थ हो सकता है, एक दार्शनिक परोक्ष के विषयों में प्रविष्ट

---

तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ मनु० ६। ७१॥

अर्थात् जैसे अग्नि में तपाने से (सुवर्णादि) धातुओं का मल नष्ट हो जाता है इसी प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं।

* किञ्च धारणासु च योग्यता मनसः॥ योग० २। ५३॥

अर्थात् और (प्राणायामों से) धारणा चित्त की एकाग्रता में मन की योग्यता होती है।

होकर अध्यात्म जगत् में दौड़ लगा सकता है। एक साधारण कारबारी आदमी अपने उद्यम के छिपे से छिपे पहलुओं की जानकारी प्राप्त कर सकता है निदान यह लोक परलोक सभी चित्त की एकाग्रता, प्राणायाम के अभ्यास ही से प्राप्त की जाती है।

प्राणायाम के अनेक फल और अनेक लाभ हैं, परन्तु उन सब को यदि मूल रूप में कहा जाय तो उनका कथन उपर्युक्त दो ही फलों के रूप में होगा। अब हम प्रतिज्ञानुसार उस विधि का वर्णन करते हैं जिससे नए सीखने वालों को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

## प्राणायाम विधि।

प्राणायाम अनेक प्रकार से अनेक कार्यों की सिद्धि के लिये किये जाते हैं यह बात पहले कही जा चुकी है इस अध्याय में हम उन प्राणायामों में से केवल उन्हीं प्राणायामों के अभ्यास की रीति

बतलावेंगे जो आमतौर से सभी के लिये उपयोगी हों ऐसे प्राणायामों की बात न कहेंगे जो योग के साधन की दृष्टि से ऊंची अवस्था प्राप्त करलेने ही पर किये जाते हैं, प्राणायाम अधिक से अधिक शांत अवस्था में करना चाहिये। मन इस उत्साह से पूर्ण होना चाहिये कि हम अब ऐसी कोई क्रिया करना चाहते हैं जिससे अनेक लाभ होंगे और इस सिद्धान्त पर विचार करते रहना चाहिये कि आत्मा बड़ा शक्तिमान् है और शरीर के सभी अन्तः और बाह्यकरणों पर उसका अधिकार है। और यह कि हम इस क्रिया के द्वारा आत्मा के उसी सामर्थ्य को जागृत करना चाहते हैं।

## प्रारम्भिक प्राणायाम।

पद्मासन या किसी आसन से जिससे सुखपूर्वक उस समय तक (बिना आसन बदले) बैठ सको जितनी देर क्रिया करनी इष्ट है बैठ जाओ। इस प्रकार की छाती, गला और मस्तिष्क तीनों एक

सीध में रहें और धीरे धीरे नाक की राह से श्वास बाहर निकालो ( रेचक ) और उसे बाहर ही रोक दो ( बाह्य कुंभक ), ( २ ) जब अधिक देर बिना श्वास लिये न रह सको तो धीरे धीरे पूरक करो ( श्वास भीतर खींचो ) और अब श्वास को भीतर रोक दो ( आभ्यन्तर कुम्भक ) ।

( ३ ) जब और अधिक समय "कुम्भक" ( भीतर श्वास रोक रखना ) न कर सको तो धीरे धीरे रेचक करो ।

( ४ ) इसी प्रकार अनेक बार अभ्यास करो और प्रत्येक क्रिया के साथ सात २ महा व्याहृतियों ( प्राणायाम मन्त्र ) का मानसिक जप करते रहो । जिह्वा से काम लेने की ज़रूरत नहीं है ।

नोट ( १ ) इस प्राणायाम से रेचक, पूरक और कुम्भक अर्थात् प्राणायाम की प्रत्येक क्रिया करने का अभ्यास होता है जिससे आगे के प्राणायामों के करने की शक्ति मनुष्य में आती है । इस प्राणायाम

का अभ्यास इतना बढ़ना चाहिए जिससे दो मिनट तक भीतर रुक सके, अधिक सामर्थ्य बढ़ने से अधिक लाभ है। परन्तु एक बात है जिसे ध्यान में रखना चाहिये कि प्रसन्नता ही से जितनी देर श्वास रुक सके रोकें चित्त परतन्त्र नहीं करना चाहिये। अभ्यास से उत्तरोत्तर बाहर और भीतर दोनों ओर श्वास रोकने की अवधि स्वयमेव बढ़ती है।

[ ७ ]

## श्वास लेने तथा भोजन आदि करने के नियम

नाक से श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिये। क्यों नाक से श्वास लेने का अभ्यास रखना चाहिये? इसका उत्तर यह है कि नाक से श्वास इसीलिये सदैव लेना चाहिये क्योंकि श्वास लेने की इन्द्रिय नाक है मुँह नहीं। जो इन्द्रिय जिस काम के लिये होती है वह काम ठीक रीति से समाप्त होने का प्रबन्ध उसी में हुआ

करता है यह प्रसिद्ध ईश्वरीय नियम है। अब देखना चाहिये कि नाक में श्वाससम्बन्धी प्रबन्ध क्या है?

( १ ) पहली और मोटी बात यही है कि नाक के बाल अनुपयोगी वस्तुओं को भीतर नहीं जाने देते।

( १ ) दूसरी बात यह है कि यदि कोई अनुपयोगी कण बालों की सीमा उल्लंघन करके भीतर चला भी गया तो वह छींक के द्वारा बाहर निकाल कर फेंक दिया जाता है।

( ३ ) तीसरी बात यह है कि फेफड़ों के कोश अत्यन्त कोमल होते हैं, वायु जो वहां पहुंचे तो उसका शीतोष्ण (Temperature.) ऐसा होना चाहिए जिसे वे सह सकें इसीलिए नाक में प्रबन्ध यह है कि वायु श्वास के द्वारा जब नाक में पहुंचता है तो नाक के भीतर के परदे (Mucus Membrane) के संपर्क से वह अनुकूल शीतोष्ण वाला हो जाता है और इस प्रकार फेफड़ों के कोमल कोशों को कुछ हानि नहीं पहुंचती, परन्तु मुंह में इन सब में से एक

भी प्रबन्ध नहीं है इसलिये नाक ही से श्वास लेना आवश्यक है और सोते समय भी मुंह खोल कर सोना चाहिये, मुंह बन्द कर सोने के बुरे अभ्यास से श्वास के द्वारा वही दुर्गन्धयुक्त वायु, प्रश्वास द्वारा विषैली होकर बाहर निकल गई थी फिर भीतर जाती है और इसी प्रकार बार २ जाती रहती है उसका परिणाम यह होता है कि इस अशुद्ध वायु के द्वारा रक्त शुद्ध होने की जगह और भी विषैली होती रहती है और फेफड़े के कोशों में भी ख़राबी आती रहती है।

अभी थोड़ा समय बीता है जब एक दुर्घटना मोपलाओं में हो गई थी जो एक ट्रेन में जा रहे थे। ट्रेन में शुद्ध वायु आने के लिए मार्ग न थे और जो द्वार थे वे भी बन्द कर दिए गए थे फल उसका यह हुआ कि मुँह से निकली अशुद्ध और विषैली वायु को बार २ श्वास के द्वारा भीतर पहुंचने से शरीर में इतना विष बढ़ गया कि जिससे १४६ मोपला.

कैदियों में से एक ही रात के अन्दर केवल बीस बाईस मोपला जिन्दा बचे, बाक़ी सबके सब मर गए। इसलिए स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है कि पुरुष, स्त्री और बच्चे सभी को मुंह खोल कर सोने का अभ्यास रखना चाहिए।

भोजन इतना और इस प्रकार करना चाहिये जिससे अजीर्ण न हो, भोजन के संबंध में इस देश में बड़ी असावधानी होती है जिसके फल रूप में देशवासियों का स्वास्थ्य ख़राब और आयु का ह्रास हो रहा है। भोजन का सुधार होना आवश्यक है उसके संबंध में कुछ नियम हैं जिनका पालन करना प्रत्येक को आवश्यक समझना चाहिये—

( १ ) भोजन नियत समय पर भूख से कुछ कम करना चाहिये।

( २ ) एक बार भोजन करने के बाद तीन घंटे से पहले कुछ भी, थोड़ी मात्रा में भी, नहीं खाना चाहिये।

( ३ ) भोजन प्रसन्नता के साथ करना चाहिये, जो लोग भोजन को ख़राब बतलाते और उसमें अनेक त्रुटियां निकालते हुए अप्रसन्नता के साथ भोजन करते हैं उन्हें वह भोजन पचता नहीं है।

( ४ ) भोजन खूब चबा २ कर करना चाहिये। ईश्वर ने दो प्रकार के प्राणी उत्पन्न किये हैं, एक वे जिनके दांत हैं, दूसरे वे जिनके दांत नहीं, जैसे— चिड़िया आदि जिनके दांत नहीं हैं। उनके पेटों में एक प्रकार की पथरी ( Gizzard ) दी गई है जिससे वे आंतों से दांतों का काम लेकर भोजन को पीस लेते हैं। मनुष्य दांत रखते हैं इनके आमाशय में उपर्युक्त पथरी नहीं दी गई है, इसलिये उनको दांतों से भोजन खूब चबा २ कर करना चाहिये जिससे वह इतना बारीक़ हो जावे कि मुँह के भीतर निकलने वाले लार ( Saliva ) से अच्छीतरह मिल जावे।

मुँह के भीतर छै ग्रंथिया ( Salivary Glands ) हैं जिनमें वे चार तो जिह्वा और जबड़े के नीचे हैं

और दो गलों में हैं। जिस समय मनुष्य भोजन करता है तो इन ग्रंथियों से लार निकलने लगती है और भोजन से मिलती है। भोजन के जितने छोटे २ सूक्ष्म कण हो जावेंगे उतने ही अधिक मात्रा में लार उन से मिल सकेगी और लार के मिलने ही से सुगमता से पाचन क्रिया का प्रारम्भ होता है। जो पुरुष इस प्रकार भोजन करते हैं कि भोजन न दांतों से पिसता है न पर्याप्त मात्रा में लार उससे मिलने पाती है, इससे क्या हानि होती है इस पर थोड़ा विचार करना चाहिये, भोजन के संबंध में पहला काम यह है कि वह शक्कर में परिवर्तित हो जावे। यह काम ग्रन्थियों से निकले हुए लार द्वारा हुआ करता है और उस समय तक बराबर होता रहता है जबतक कि भोजन आमाशय में नहीं पहुंच जाता है। जब भोजन आमाशय में शक्कर में परिवर्तित होकर पहुंच जाता है तब से आमाशय की सूक्ष्म नलियों से पाचक रस (Gastric Juice) निकल कर मिलता है

और इसी पाचक रस में एक और सूक्ष्म पाचक द्रव्य (Pepsin) होता है, इस रस और इस पाचक द्रव्य के मिलने ही से भोजन पचता है परन्तु ये पाचक रस और पाचक द्रव्य भोजन से तभी मिलते हैं जब भोजन शक्कर में परिवर्तित हो चुका हो। यदि शक्कर में अपरिवर्तित भोजन आमाशय में पहुंचता है तो वह पचने की जगह सड़ना शुरू हो जाता है और यही सड़ा हुआ भोजन आगे अंतड़ियों में जाता है और उनमें ऐसी गन्दगी उत्पन्न करता है जिससे सड़ी गली वस्तुओं में उत्पन्न होने वाले कीड़ों के सदृश अंतड़ियों में भी केंचुआ उत्पन्न हो कर मनुष्य को रोगी बना देता है।

उधर आमाशय में सड़े हुए भोजन का सड़ा भाग बाक़ी रहता है, जो नये आने वाले भोजन से मिलकर उसे भी विषैला बना देता है और इस प्रकार स्थिर अजीर्णता हो जाती है और सारा शरीर इसी विषयुक्त भोजन के बने रक्त द्वारा, विषयुक्त

होता रहता है और अनेक रोग और व्याधियां शरीर में उत्पन्न हो जाती हैं, परन्तु ये सब भयानक परिणाम केवल भोजन को चबा कर न खाने से और उसे लार द्वारा शक्कर में परिवर्तित न कर देने से होते हैं। इसलिये भोजन खूब चबा कर करना आवश्यक है। भला जब शरीर भोजन के ठीक न करने से ऐसा खराब और इतना विषयुक्त हो तब मनुष्य किस प्रकार स्वस्थ रह सकता है।

[ ८ ]

## स्वाध्याय और उसकी महिमा।

प्रत्येक मनुष्य को स्वाध्यायशील होना चाहिए, स्वाध्याय से निम्न लाभ होते हैं:—

( १ ) साधारण ज्ञान की वृद्धि होती है और इस ज्ञानवृद्धि से मनुष्य से संकोच ( तंगदिली ) दूर होती है और उदारता तथा सहनशक्ति आती है।

( २ ) चित्त की वृत्तियां अन्य साधनों के सहयोग से ऐसी बनने लगती हैं कि फिर बुराई की ओर नहीं जा सकतीं।

( ३ ) स्वाध्याय ब्रह्मचर्य का साधक है।

( ४ ) नियमपूर्वक स्वाध्याय से मनुष्य अनेक भाषायें और विद्यायें सीख सकता है।

( ५ ) एक घंटे के स्वाध्याय से मनुष्य भली-भाँति किसी पुस्तक के २० पृष्ठ पढ़ सकता है, वर्ष भर में सात हज़ार से अधिक पृष्ठ अर्थात् ४०० पृष्ठों वाले १८ ग्रन्थों का अध्ययन कर सकता है।

( ६ ) वरमौन्ट ( अमेरिका ) के एक मोची (Shoe maker) चार्लस सी० फ्रास्ट (Charles C. frast) ने अपने पेशे के काम से प्रतिदिन एक घंटा बचा कर गणित के अध्ययन में १० वर्ष तक लगाया फल यह हुआ कि वह उच्चकोटि का गणितज्ञ हो गया।

( ७ ) योगदर्शन के भाष्य में महर्षि व्यास ने लिखा है:—

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् । स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते ॥ योग० व्यासभाष्य १ । २८ ॥

अर्थात्—स्वाध्याय से मनुष्य योग को धारण करे। योग से स्वाध्याय का मनन करे। दोनों ( स्वाध्याय+योग ) के पालन से परमात्मा (हृदय में) प्रकाशित होता है।

[ ६ ]

## किन ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये ।

दैनिक स्वाध्याय के लिये यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय, जिसे उपनिषदों का आदिस्रोत और ईशोपनिषद् भी कहते हैं, यहां अंकित किया जाता है—इसके स्वाध्याय से वेद और उपनिषद् दोनों के

स्वाध्याय का फल मिलेगा, इनके सिवा अन्य उपनिषद् और ऋषि दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश ( प्रथम के १० समुल्लास ), ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्य्याभिविनय और गो करुणानिधि आदि ग्रन्थों तथा अन्य ग्रन्थों का भी, जिन से अभ्युदय और निःश्रेयस ( लोक+परलोक ) की सिद्धि हो, स्वाध्याय करना चाहिये ।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥

यह सब जो कुछ पृथिवी पर चराचर वस्तु है ईश्वर से आच्छादन करने योग्य अर्थात् आच्छादित है । उसी ईश्वर के दिये हुए पदार्थों से भोगकर किसी के भी धन का लालच मत कर ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः । एवन्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२

यहां कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष तक

जीने की इच्छा करे इस प्रकार तुझ मनुष्य में कर्म नहीं लिप्त होता इससे भिन्न और कोई मार्ग नहीं है।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥

जो कोई आत्मा के घातक ( आत्मा के विरुद्ध आचरण करनेवाले ) मनुष्य हैं वे मरकर अँधेरे से आच्छादित हुए प्रकाशरहित नाम वाले जो लोक हैं उनको प्राप्त होते हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

वह ब्रह्म अचल, एकाग्र मन से अधिक वेगवाला है क्योंकि सब जगह पहिले से पहुंचा हुआ है उस ब्रह्म को इन्द्रियां नहीं प्राप्त होतीं अर्थात् वह इन्द्रियों से उन इन्द्रियों का विषय न होने के कारण प्राप्त नहीं होता। वह अचल होने पर भी

दौड़ते हुए अन्यों के उल्लंघन किये हुए हैं उसके भीतर वायु जलों को मेघादि रूप में धारण करता है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥५॥

वह ब्रह्म गति देता है परन्तु स्वयं गति में नहीं आता, वह दूर है, वह समीप भी है, वह इस सब के अन्दर और बाहर भी है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानु पश्यति
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥६॥

जो कोई सम्पूर्ण चराचर जगत् को परमेश्वर में ही देखता है और सम्पूर्ण चराचर जगत् में परमेश्वर को देखता है इससे वह निन्दित नहीं होता।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवा भूत् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥७॥

जिस अवस्था में विशेष ज्ञान (योगी की दृष्टि में) सम्पूर्ण चराचर जगत् परमात्मा ही हो जाते हैं

उस अवस्था में ऐसे एकत्व को देखने वाले को कहां मोह और कहां शोक।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

वह ईश्वर सर्वव्यापक है, जगत् उत्पादक, शरीर रहित, शारीरिक विकार रहित, नाड़ी और नस के बन्धन से रहित, पवित्र पाप से रहित, सूक्ष्मदर्शी, ज्ञानी, सर्वोपरि वर्तमान, स्वयंसिद्ध, अनादि प्रजा जीव के लिये ठीक २ कर्म का विधान करता है।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः॥ ९॥

जो कर्म का ज्ञान की उपेक्षा करके सेवन करते हैं। गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो कर्म की उपेक्षा करके केवल ज्ञान में रमते हैं वे उससे भी अधिक अंधकार को प्राप्त होते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥

ज्ञान का और ही फल कहते हैं और कर्म का और ही फल कहते हैं। ऐसा हम धीर पुरुषों का वचन सुनते हैं जो हमारे लिये उन वचनों का उपदेश करते हैं।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥११॥

जो ज्ञान और कर्म इन दोनों को साथ ही साथ जानता है वह कर्म से मृत्यु को तैर कर ज्ञान से अमरता को प्राप्त होता है।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः ॥१२॥

जो कारण प्रकृति के कारण शरीर को अन्य शरीरों की उपेक्षा करके सेवन करते हैं वे गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो कार्य प्रकृति=सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर में कारण शरीर की उपेक्षा करके

रमते हैं वे उससे भी अधिक अंधकार को प्राप्त होते हैं।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥

कार्य प्रकृति=सूक्ष्म+स्थूल शरीर से और ही फल कहते हैं और कारण प्रकृति अर्थात् कारण शरीर से और ही फल कहते हैं इस प्रकार धीर पुरुषों का वचन हम सुनते हैं जो हमारे लिये उन वचनों का उपदेश कर गये हैं।

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदो भयꣳ सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४ ॥

जो कोई कार्य रूप प्रकृति=सूक्ष्म+स्थूल शरीर और कारण रूप प्रकृति=कारण शरीर उन दोनों के साथ साथ जानता है वह कारण शरीर से मृत्यु को तैर कर और कार्य शरीर से अमरता को प्राप्त होता है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ॥ १५ ॥

सत्य का मुख स्वर्ण के पात्र से ढका हुआ है हे पूषन्! उस सत्य धर्म के दिखाई देने के लिये तू इस आवरण को हटा दे।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजो यत्ते रूपङ्कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥ १६॥

हे सर्वपोषक, अद्वितीय, न्यायकारी प्रकाशस्वरूप प्रजापते! ताप (दुःखप्रद किरणों) को दूर कर और सुखप्रद तेज को प्राप्त करा। जो अत्यन्त मंगलमय रूप हैं मैं आपके उस रूप को देखता हूं इसलिये जो वह पुरुष है वह मैं हूं।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर॥ १७॥

शरीर में आने जाने वाला जीव अमर है। केवल यह शरीर भस्मपर्यन्त है इसलिये अन्त समय में हे जीव ओ३म् का स्मरण कर, बल प्राप्ति के लिये स्मरण कर और अपने किये हुये का स्मरण कर।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराण-मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

हे प्रकाशस्वरूप, तेजस्वी ईश्वर ! ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये अच्छे मार्ग से हमको चलाइये आप हमारे सम्पूर्ण कर्मों को जानते हैं हमको उलटे मार्ग पर चलने रूप पाप से बचाइये, इसलिये आपको हम नमस्कार करते हैं ।

[ १० ]

## ब्रह्मचर्य्य पर विशेष ध्यान क्यों देना चाहिये ।

वेद में लिखा है

ब्रह्मचारी ब्रह्मभ्राजद्बिभर्त्ति तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः । प्राणापनौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥

अथर्ववेद काण्ड ११ । सूक्त ५ ॥

अर्थात्—जब ब्रह्मचारी वेदाध्ययन से प्रकाशित होता है, उसमें दिव्य गुण आते हैं, सभी विद्वान् उससे मित्रता करते हैं और वह प्राण, दीर्घजीवन, उत्तम वाणी, पवित्र मन, शुद्ध हृदय, परमात्मज्ञान और श्रेष्ठ प्रजा को धारण करता है। इन्हीं गुणों की प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य्य पर विशेष ध्यान देना चाहिये और कम से कम २४ वर्ष तक पुरुष और १६ वर्ष तक कन्या को तो अवश्य ही ब्रह्मचर्य्य धारण करना चाहिये। और यदि चाहें तो इससे भी अधिक काल तक ब्रह्मचर्य्य धारण करें। ऋषि दयानन्द आजीवन ब्रह्मचारी रहे इसी प्रकार न्यूटन भी।

[ ११ ]

## ब्रह्मचर्य्य क्या है उसके साधक तथा बाधक हेतु।

ब्रह्मचर्य्य के दो पहलू हैं, एक उससे शारीरिक उन्नति होती है दूसरे मानसिक और आत्मिक शारीरिक

उन्नति किस प्रकार होती है सब से पहले इसी के समझ लेनें की ज़रूरत है, मनुष्य जो भोजन करता है वह रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि और मज्जा रूपों में परिवर्तित होता हुआ अन्त में वीर्य के रूप में आजाया करता है, शरीर में इसी वीर्य का उत्पन्न और संग्रह करना ब्रह्मचर्य की स्थूल कार्य्यप्रणाली है। इस वीर्य्य के संग्रह से शरीर में असीम शक्ति आती है। उसी शक्ति से शरीर, मन और आत्मा क्रमशः सभी पुष्ट हुआ करते हैं। वीर्य्य की दो गति होती हैं एक ऊर्ध्वगति जिससे वह समस्त शरीर में पहुंच कर शरीर के सभी अंगों को पुष्ट किया करता है, दूसरी अधोगति जिससे उसका शरीर से बहिष्कार हुआ करता है। बहिष्कार से कितनी हानि हुआ करती है उसका अन्दाज़ा केवल इस एक ही बात से लगाया जा सकता है कि शरीर से यदि एक तोला वीर्य निकल जावे तो इसका अर्थ यह समझना चाहिये कि शरीर से ४० तोला रक्त कम होगया।

अभिप्राय स्पष्ट है कि ४० तोला रक्त की शक्ति एक तोला वीर्य्य की शक्ति के बराबर होती है, शरीर से वीर्य्य की अधोगति होने के दो कारण होते हैं-(१) दुष्ट-भोजन, (२) विचारभ्रष्टता।

दुष्ट-भोजन का अभिप्राय यह है कि मनुष्य बहुत खटाई, लाल मिर्च और चटपटी चीज़ें खावें इससे वीर्य्य का स्वाभाविक गाढ़ापन नष्ट होकर वह पतला होजाया करता है और पतला होने से उसकी प्रवृत्ति अधोगति की ओर हो जाया करती है। विषय-वासना के विचारों के मन में बार २ आने का भी यही परिणाम हुआ करता है। इसलिये आवश्यक है कि सात्विक भोजन और शुद्ध विचारों से काम लेकर मनुष्य वीर्य्य के स्वाभाविक गाढ़ेपन को नष्ट न होने देवें अन्यथा बड़ी हानि उठानी पड़ेगी।

[ १२ ]

## ब्रह्मचर्य्य का साधन स्वाध्याय के सिवा "तप" है।

तप कठोरता के सहन करने और आरामतलबी को दूर करने का नाम है। भूमि या तख्त पर गुदगुदा बिस्तर न बिछा कर सोना, सरदी गरमी का सहना, प्रत्येक कार्य्य के लिये समयविभाग बना कर उसके अनुसार चलना, मन को शुद्ध रखना, इन्द्रियों के वश में न होकर उनका संयम करना आदि तप कहलाता है। मनुष्य जितनी अधिकता से कष्टों को सहन किया करता है उतनी ही उसके भीतर साहस की वृद्धि होती है और उसमें वीरता आती है इसके विपरीत आरामतलब बन कर मनुष्य पस्तहिम्मत और कायर बन जाया करता है।

[ १३ ]

## सदाचार के साधन ।

मनुष्य सदाचारी बने इसके लिये उसे दो बातें करनी चाहियें ।

( १ ) प्रत्येक काम ईमानदारी और सत्यता का आश्रय लेकर करना चाहिये ।

( २ ) परिश्रमशील बनना चाहिये, यदि मनुष्य इन दो ही बातों का कठोरता के साथ पालन करे तो उसके सदाचारी बन जाने में कुछ भी सन्देह नहीं रहता ।

---

[ १४ ]

## रात्रि में सोते समय का व्रत और पाठ करने के मन्त्र ।

व्रत—ईश्वर को सम्बोधन करके निश्चय करो कि मैं ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करूंगा और हृदय को ईर्ष्या और द्वेष के भावों से पृथक् रक्खूंगा, मेरे

मन में स्वप्न में भी कोई कुत्सित भाव न आवेंगे और मैं शान्ति और सुखदायिनी गहरी नींद का आनन्द भोगूंगा।

इस व्रत को बार २ मन में दुहराकर नीचे लिखे मन्त्रों का पाठ करते और उनके अर्थों का विचार करते हुए मनुष्य को सो जाना चाहिये।

## सोते समय पढ़ने के मन्त्र।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥ य० अ० ३४ ॥

भावार्थ—मन जागृत, स्वप्न और निद्रा में दूर दूर भागता तथा भटकता है, उस में अनोखी शक्तियां भी विद्यमान हैं। ऐसे वेगवान् मन को सदा शुभ विचार वाला बनाना चाहिये। अन्यथा इसकी जो अद्भुत शक्ति है, वही मनुष्य के नाश का हेतु हो सकती है।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥

य० अ० ३४ ॥

भावार्थ—सब लोग अपने मन के द्वारा ही सब काम करते हैं, शान्ति सम्पत्ति के और अशान्ति तथा विपत्ति के समय में भी मन के द्वारा कर्म होते हैं, इसलिये सिद्ध होता है कि मन के शुद्ध होने से कर्म भी शुद्ध होंगे और मन के अशुद्ध होने से कर्म अशुद्ध होंगे। इसलिये सदा मन को शुभ विचार और आचार से पवित्र करने का संकल्प करता रहा करे।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥३॥

य० अ० ३४ ॥

भावार्थ—मन के अन्दर ज्ञानशक्ति, चिन्तन

शक्ति और धैर्य-शक्ति रहती है। और यह मन प्रजाओं में अमृतमय और तेजोमय है। यह इतना शक्ति-शाली है कि इसके विना मनुष्य कोई भी कर्म नहीं कर सकता। सब कर्म इसी की सहायता से किये जाते हैं। इसलिये इस को शुभ संकल्प वाला बनाना चाहिये।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥

य० अ० ३४ ॥

भावार्थ—भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में जो कुछ बनता है, वह सब मन द्वारा ही ग्रहण किया जाता है। पांच ज्ञानेन्द्रिय और अहंकार तथा बुद्धि द्वारा जो यह जीवन-यज्ञ चलाया जा रहा है, इस प्रकार जो मन सब कार्यकारी इन्द्रियगणों का अधिष्ठाता है, वह मेरा मन सदा शुभ संकल्प वाला बने और कदापि अशुभ संकल्प न करे।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ५ ॥

य० अ० ३४॥

भावार्थ—मन के अन्दर सम्पूर्ण वेद और सब शास्त्र तथा अन्य सब ज्ञान ओतप्रोत ( भरा ) रहता है अर्थात् ज्ञानी के मन में यह सब ज्ञान रहता है। मन की शक्ति ऐसी है कि जिसमें यह सब ज्ञान रह सके। सब प्राज्ञ लोग इसी से मनन करते हैं। इस प्रकार का यह शक्तिशाली मन सदा शुभ विचार से युक्त हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६ ॥

यजु० अ० ३४॥

भावार्थ—जो मन अच्छे सारथी की तरह, जैसे वह घोड़े की लगाम लगाकर नियम में रखता है मनुष्यों

को चलाता है वह अत्यन्त वेगवाला है और हृदय में उसका स्थान है।

[ १५ ]

## ईश्वर का विश्वास और ईश्वरोपासना

मनुष्य के लिये अपने को उत्कृष्ट बनाने के लिये आवश्यक है कि उसका ईश्वर पर दृढ़ विश्वास हो और उसे प्रातः सायं ईश्वरोपासना करनी चाहिये। ईश्वर की उपासना का कार्य्य जप से प्रारंभ होता है। जप ईश्वर के नित्य नाम 'ओ३म्' तथा अन्य गुण वाचक नामों का किया जाता है। जप का तात्पर्य्य यह है कि ईश्वरीय दिव्यगुणों का प्रभाव उपासक की आत्मा पर पड़े और उसके कल्याण का कारण बने।

### ईश्वर-स्तुति

( १ )

तुम हो प्रभु चांद, मैं हूँ चकोरा,<br>
तुम हो कमल फूल, मैं रस का भौंरा।

ज्योति तुम्हारी का मैं हूँ पतंगा,
तुम आनन्दघन हो, मैं हूं वन का मोरा।
जैसे है चुम्बक की लोहे से प्रीती,
आकर्षण करे मोहि लगातार तोरा।
पानी बिना जैसे हो मीन व्याकुल,
ऐसा ही तड़पाय तेरा बिछोड़ा।
एक बूंद जल का मैं प्यासा हूं प्यारे,
करो अमृत-वर्षा हरो ताप मेरा।

( २ )

करो हरि नैया मेरी पार।
तुम बिन कौन बचावन हारा, यह जग पारावार॥
पाप प्रलोभन इन्जिन भगवन, खींचि करी मझधार।
मन केवट माया के मद में घेरा पंच मकार॥
ढीली पड़ी सुरति की डोरी स्वामिन तुम्हें बिसार।
बार बार टकरत दुःसह दुख टूट गया पतवार॥
नाव पुरानी झांझरि होगई, चण में डूबन हार।
बहीं हाथ गहो करुणाकर पार करो करतार॥

( ३ )

पितु मातु सहायक स्वामि सखा,
तुमहीं इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और आधार नहीं,
तिनके तुम ही रखवारे हो।
सब भाँति सदा सुखदायक हो,
दुख दुर्गुण नासन हारे हो।
प्रतिपाल करो सगरे जग को,
अतिशय करुणा उर धारे हो।
भुलि हैं हम ही तुमको तुम तो,
हमरी सुधि नाहिं बिसारे हो।
उपकारन को कछु अन्त नहीं,
छिन ही छिन जो विस्तारे हो।
महाराजा महा महिमा तुम्हरी,
समुझैं बिरले बुधिवारे हो।
शुभ शान्ति-निकेतन प्रेमनिधे,
मन-मन्दिर के उजियारे हो।

अहि जीवन के तुम जीवन हो,

इन प्रानन के तुम प्यारे हो।

तुम सो प्रभु पाय प्रतापहरी,

किहि के अब और सहारे हो।

( ४ )

जिसमें तेरा नहीं विकाश,

ऐसा कोई फूल नहीं है ॥ टेक ॥

मैंने देख लिया सब ठौर, तुझसा मिला न कोई और।

सबका तू ही है सिरमौर, इसमें कुछ भी भूल नहीं है ॥१॥

तुझ से मिलकर करुणानन्द! मुनिवर पाते हैं आनन्द।

तेरा प्रेम सच्चिदानन्द! किसको मङ्गल-मूल नहीं है ॥२॥

उर घर धर्म जीवनाधार, गुरुजन कहें पुकार पुकार।

उसका बेड़ा होगा पार, जिसके तू प्रतिकूल नहीं है ॥३॥

तेरा गाय अखिल गुणग्राम, करनी करता है निष्काम।

मन में है शङ्कर! सुखधाम, मेरे संशयं शूल नहीं है ॥४॥

( ५ )

प्रेम बीज तू अविनाशी है, नश्वर विश्व रहे न रहे।
विश्व प्रेम में रंग ले प्यारे, फिर तनु-रक्त रहे न रहे॥
विद्युतमय विचार विभुता हो, मृण्मय देह रहे न रहे।
क्षत विक्षत हृदय में समता हो, शब्द स्नेह रहे न रहे॥
नव अँकुर विकासमय उलहे, ऊपर खण्ड रहे न रहे।
ज्ञानज्योति जग में प्रकटित हो, अग्नि प्रचंड रहे न रहे॥
क्रय कर सत्य त्याग दे सर्वस, पीछे शक्ति रहे न रहे।
हो बलिदान कर्म वेदी पर, स्वार्थभक्ति रहे न रहे॥

[ १६ ]

## ओ३म् के जप की विधि।

योगदर्शन में लिखा है—

तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्॥

अर्थात् ईश्वर का नाम ओ३म् है, उसका जप और उसके अर्थ का चिन्तन करना चाहिये, बिना अर्थ चिन्तन किये खाली जीभ से ओ३म् ओ३म् रटना व्यर्थसा है।

ओ३म् के अनेक अर्थ हैं परन्तु जप के उद्देश्य से केवल एक अर्थ लेने की ज़रूरत है। ओ३म् 'अव रक्षणे' धातु से बनता है, इस प्रकार ओ३म् के अर्थ रक्षक के हुए, इसलिये जप करने वाले को जप के समय बार २ अपने हृदय में इस भावना को जागृत करना चाहिये कि ईश्वर हृदय में है और वह हमारी रक्षा कर रहा है। नियम से यह जप प्रातः सायं करना चाहिये परन्तु यदि रात्रि में किसी समय आंख खुल गई और नींद नहीं आती तो बिस्तर ही पर बैठ कर या लेटे २ ही यह जप करना चाहिये। अथवा रास्ते चलते हुए भी यह जप कर सकते हैं। निदान उठते बैठते, सोते जागते जब भी अवकाश मिले तभी जप को हृदय की इस भावना से इस प्रकार भर लेना चाहिये कि अटल विश्वास हो जावे कि ईश्वर हृदय में है और हमारी रक्षा कर रहा है, इस विश्वास के उत्पन्न होने से मनुष्य में निर्भीकता आती है और वह मृत्यु से भी बेखौफ़ हो जाता है,

भला जिसका रक्षक ईश्वर साथ मौजूद हो उसे किसका भय हो सकता है ?।

## ओङ्कार-स्मरण

( १ )

'ओ३म्' अक्षर अखिलाधार जिसने जान लिया ।।टेक ।।

एक, अखण्ड, अकाय, असङ्गी, अद्वितीय, अविकार,
व्यापक, ब्रह्म, विशुद्ध, विधाता, विश्व विश्व-भर्तार
को पहचान लिया ।। ओम्० ।।

भूतनाथ, भुवनेश, स्वयम्भू, अभय भाव भण्डार,
नित्य, निरञ्जन, न्यायनियन्ता, निर्गुण, निगमागार,
मन को मान लिया ।। ओम्० ।।

करुणानन्द, कृपालु, अकर्त्ता, कर्महीन कर्त्तार,
परमानन्द पयोधि, प्रतापी, पूरण परमोदार
से सुखदान लिया ।। ओम्० ।।

सर्वशिरोमणि श्री 'शङ्कर' को जाना सब का सार,
जिसने जीवन बेड़ा अपना, भवसागर से पार
करना ठान लिया ।। ओम्० ।।

( २ )

ओ३म् अनेक बार बोल; प्रेम के प्रयोगी ॥ ध्रुव ॥

है यही अनादि नाद, निर्विकल्प निर्विवाद,
भूलते न पूज्यपाद, वीतराग योगी ।
ओ३म् अनेक बार बोल, प्रेम के प्रयोगी ॥

वेद को प्रमाण मान, अर्थ योजना बखान,
गा रहे गुणी सुजान, साधु स्वर्ग भोगी ।
ओ३म् अनेक बार बोल, प्रेम के प्रयोगी ॥

ध्यान में धरें विरक्त, भाव से भजें सुभक्त,
त्यागते अघी अशक्त. पाँच पाप रोगी ।
ओ३म् अनेक बार बोल, प्रेम के प्रयोगी ॥

शंकरादि नित्य नाम, जो जपे विसार काम,
तो बने विवेक धाम, मुक्ति क्यों न होगी ।
ओ३म् अनेक बार बोल, प्रेम के प्रयोगी ॥

## विनय ।

शरण अपनी में रख लीजे, दयामय दास हूं तेरा ।
तुझे तजकर कहां जाऊं, हितू को और है मेरा ॥
भटकता हूं मैं मुद्दत से, नहीं विश्राम पाता हूं ।
दया की दृष्टि से देखो, नहीं तो डूबता बेड़ा ॥
सताया राग द्वेषों का, तपाया तीन तापों का ।
दुखाया जन्म मृत्यु का, हुआ तंग हाल है मेरा ॥
दुखों का मेटने वाला, तुम्हारा नाम सुनकर मैं ।
शरण मैं आ गिरा अब तो, भरोसा नाथ है तेरा ॥
क्षमा अपराध कर मेरे, फ़क़त अब आश है तेरी ।
दया बलदेव पर करके, बनाले नाथ निज चेरा ॥

[ १७ ]

# सामाजिक कर्त्तव्य

( १ ) आर्यसमाज का सभासद् बनना ।
( २ ) आर्यसमाज के प्रत्येक कार्य में भाग लेना और सहायता करना ।

( ३ ) समाज में सुशीलता से बैठना।

( ४ ) परस्पर एक दूसरे का नम्रता और प्रेम के साथ सत्कार करना, एक दूसरे के दुःख सुख में शरीक होना।

( ५ ) अपने बालकों को आर्यकुमार-सभाओं में भेजना।

( ६ ) विवाह आदि गुण कर्म की मर्यादा से करना।

( ७ ) संन्यासियों, उपदेशकों, पुरोहितों का मान करना।

( ८ ) किसी से कटु वचन न बोलना।

( ९ ) स्त्रियों का विशेष मान करना।

(१०) संस्कारों और ऐसे ही अन्य अवसरों पर एक दूसरे के यहां जाना और जो कार्य हो उसमें उत्साह और सहानुभूति के साथ भाग लेना।

[ १८ ]

## नैमित्तिक कर्म

नैमित्तिक कर्म दो प्रकार के हैं—( १ ) विशेष यज्ञ ( २ ) पाक्षिक यज्ञ।

(क) पौर्णमासी को नैत्यिक यज्ञ के बाद स्थाली-
पाक (मोहनभोग=हलवा), से निम्न
मन्त्रों से आहुति देनीः—

ओं अग्नये स्वाहा ॥

ओं अग्निषोमाभ्यां स्वाहा ॥

ओं विष्णवे स्वाहा ॥

(ख) अमावास्या के दिन की विशेष आहुति
उपर्युक्त तीनों ही हैं, भेद केवल इतना
है कि "ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा" के
स्थान में निम्न मन्त्र से आहुति दी
जाती हैः—

ओं इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥

नवसस्येष्टि—होली और दिवाली को।
संवत्सरेष्टि—विक्रम संवत् के प्रथम दिन।
इनकी विधि पर्वों की पद्धति में मिलेगी।
(२) विशेष पर्व—इनका विवरण आगे करेंगे।

[ १९ ]

## यज्ञ से लाभ

हवन का नाम 'होम' 'अग्निहोत्र' और 'देवयज्ञ' भी है। हवन का अर्थ 'दान' है। जिस कर्म से (अग्नि ज्ञानस्वरूप) परमेश्वर की आज्ञा पालन करने के लिये भौतिक अग्नि में सुगन्ध आदि पदार्थों का दान किया जाता है, वह कर्म 'हवन' आदि कहाते हैं। जिन मन्त्रों से हवन किया जाता है, वे 'हवन-मन्त्र' कहलाते हैं।

प्रातःकाल और सायंकाल तथा आनन्दोत्सवों पर हवन करना सब मनुष्यों का सदा कर्तव्य है। हवन करने से संसार में बुद्धि, वृद्धि, शूरता, धीरता, बल तथा उत्तम स्वस्थता फैलती है। कुछएक लाभ यहां प्रदर्शित किये जाते हैं:—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥१॥
य० ४० । २ ॥

मनुष्य को चाहिये कि कर्तव्य-कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष की पूर्ण आयु जीने की कामना करे।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृत-
मश्नुते ॥ २ ॥ य० ४० । १४ ॥

मनुष्य कर्म द्वारा मृत्यु को पार करके विद्या द्वारा अमृत को प्राप्त हो जाता है।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः
सौमनसस्य दाता ॥ ३ ॥

अथ० कां० १६ । अनु० ७ । मं० ३ ॥

सब घरों में सायं तथा प्रातः दोनों समय परमेश्वर तथा भौतिक अग्नि की प्रतिष्ठा होवे ।

सायं प्रातस्तु जुहुयात्सर्वकालमतन्द्रितः ॥४॥
हारीत स्मृति ४ । ४ ॥

सदा सायं प्रातः हवन करना चाहिये ।

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः ॥ ५ ॥
मै० उ० ६ । २६ ॥

स्वर्ग की कामना वाला होम किया करे ।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ।
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥६॥
मनु० ३ । ७५ । ६ ॥

मनुष्य को चाहिये कि स्वाध्याय और देवयज्ञ में नित्य लगा रहे। देवयज्ञ में लगा हुआ जड़ और चेतन दोनों प्रकार के जगत् को वह धारण करता है।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥७॥

मनु० ३। ७९। ६॥

अग्नि में डाली हुई आहुति अच्छी तरह से सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य से वर्षा होती है, वर्षा से अन्न होता है और फिर प्रजाएं होती हैं।

अग्निहोत्रं सायं प्रातः गृहाणां निष्कृतिः स्विष्टं सुहुतं यज्ञक्रतूनां परायणं स्वर्गस्य लोकस्य ज्योतिः ॥ ८ ॥

तैत्तिरीयारण्यक १०। ६३। १॥

सायं प्रातः अग्निहोत्र घरों की शुद्धि करने वाला है। श्रद्धापूर्वक सम्पूर्ण किया हुआ यज्ञ यज्ञों और क्रतुओं की पराकाष्ठा है। यह स्वर्ग लोक की ज्योति है।

नौर्हि वा एषा स्वर्ग्या । यदग्निहोत्रम् ॥११॥

श० २ । ३ । ३ । १५ ॥

जो अग्निहोत्र है, वह निश्चय करके स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली नौका है।

अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च ॥१२॥

तैत्तिरीयोप० १ । ६ ॥

अग्निहोत्र और स्वाध्याय तथा उपदेश भी सब मनुष्यों को करना चाहिये।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१३॥

गीता ३ । १४ ॥

अन्न से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न मेघ से पैदा होता है। मेघ यज्ञ से उत्पन्न होता है और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है।

अहन्यहनि ये त्वेतानकृत्वा भुञ्जते स्वयम् ।
केवलं मलमश्नन्ति ते नरा न च संशयः ॥१४॥

महाभारत अश्व० १०४ । १६ ॥

प्रतिदिन जो इन अग्निहोत्र आदि महायज्ञों को किये विना स्वयं खाते पीते हैं, वे मनुष्य केवल 'मल' खाते हैं वस्तुतः इसमें संशय नहीं।

[ २० ]

## यज्ञ का स्थान

यज्ञ का स्थान शुद्ध और पवित्र होना चाहिये जहां शुद्ध वायु का आवागमन विना किसी रुकावट के हो। यदि वहां कुछ हरे वृक्ष हों तो उससे स्थान की उपयोगिता और बढ़ जाती है।

[ २१ ]

## यज्ञ के पात्र

( १ ) घृतपात्र, ( २ ) सामग्री-पात्र ऋत्विजों की संख्या की दृष्टि से, ( ३ ) आचमन पात्र ऋत्विजों की संख्यानुसार, (४) जलपात्र, ( ५ ) स्रुवा, ( ६ ) जल छिड़कने का पात्र, ( ७ ) आहुति से गिरे हुए घृत के लेने का पात्र, ( ८ ) चिमटा, ( ९ ) हवनकुंड,

( १० ) पंखा, ये पात्र सोने, चांदी, तांबे या लकड़ी के यथारुचि होने चाहियें ।

[ २२ ]

## यज्ञ-समिधा

पलाश ( ढाक ), शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, देवदारु, चीड़ और बांझ आदि की होनी चाहिये जो सूखी हो परन्तु घुनी न हो, न और किसी प्रकार से दूषित हो ।

[ २३ ]

## यज्ञ की सामग्री

वसन्त—छलीरा, तालीसपत्र, पत्रज, दाख, लज्जावती, शीतलचीनी, कपूर, चीड़, देवदार, गिलोय, अगर, तगर, केसर, इन्द्रजौ, गुग्गुल, कस्तूरी, तीनों चन्दन, जावित्री, जायफल, धूप, सरसों, पुष्करमूल, कमलगट्टा, मंजीठ, बनकचूर, दालचीनी, गूलर

की छाल, तेजफल, शंखपुष्पी, चिरायता, खस. गोखरू, खाण्ड, गोघृत, ऋतुफल, भात या मोहन भोग, जंड समिधा।

ग्रीष्म—मुरा, वायविडंग, कपूर, चिरोंजी, नागरमोथा, पीला चन्दन, छलीरा, निर्मल, सतावर, खस, गिलोय, धूप, दालचीनी, लवंग, कस्तूरी, चन्दन, तगर, भोजपत्र, भात, कुश की जड़, तालीस-पत्र, पद्माख, दारू हल्दी, लालचन्दन, मंजीठ, शिला-रस, केसर, जटामांसी, नेत्रवाला, इलायची बड़ी, उनाव, आमले, मूंग के लड्डू, ऋतुफल, चन्दनचूर।

*वर्षा—काला अगर, पीला अगर, जौ, चीड़,* धूप, सरसों, तगर, देवदारु, गुग्गुल, नकछिकनी, राल, जायफल, मुंडी, गोला, निर्मल, कस्तूरी, मखाने, तेजपत्र, कपूर, वनकचूर, बेल, जटामांसी, छोटी इलायची, वच, गिलोय, तुलसी के बीज, वायविडंग, कमलडन्डी, शहद, चन्दन श्वेत का चूरा, ऋतुफल, नागकेसर, ब्राह्मी, चिरायता, उड़द के लड्डू, छुहारे,

शंखाहूली, मोचरस, विष्णुक्रांता, ढाक की समिधा, गोघृत, खाण्ड, भात ।

शरद्—चन्दन सफेद, चन्दन लाल, चन्दन पीला, गुग्गुल, नागकेसर, इलायची बड़ी, गिलोय, चिरोंजी, बिदारीकन्द, गूलर की छाल, ब्राह्मी, दाल-चीनी, कपूर-कचरी, मोचरस, पितपापड़ा, अगर, भारंगी, इन्द्रजौ, रेणुका, मुनक्का, अष्टगन्ध, शीतल-चीनी, जायफल, पत्रज, चिरायता, केसर, कस्तूरी, किशमिश, खांड, जटामांसी, तालमखाना, सहदेवी, ढाक की समिधा, धान की खील, खीर, विष्णुक्रांता, कपूर, गोघृत, ऋतुफल ।

हेमन्त—कुट्, मुसली, गन्धकोकिला, मुड़वाच्छ, पितपापड़ा, कपूर, कपूरकचरी, नकछिकनी, गिलोय, पटोलपत्र, दालचीनी, भारंगी, सौंफ, मुनक्का, कस्तूरी, चीड़, गुग्गुल, अखरोट, रासना, शहद, पुष्करमूल, केसर, छुहारे, गोखरू, कौंच के बीज, कांटेदार गिलोय, पपंटी, बादाम, मुलहटी, काले तिल,

जावित्री, लाल चन्दन, मुश्कवाला, तालीसपत्र, रेणुका, खोपा, विना नमक की खिचड़ी, आम या खैर की समिधा, गोघृत, देवदारु ।

शिशिर—अखरोट, कचूर, वायविडंग, राल, सुंठी, मोचरस, गिलोय, मुनक्का, रेणुका, काले तिल, कस्तूरी, तेजपत्र, केसर, चन्दन, चिरायता, छुहारे, तुलसी के बीज, गुग्गुल, चिरौंजी, काकड़ासिंगी खांड, सतावर, दारु हल्दी, शंखपुष्पी, पद्माख, कौंच के बीज, जटामांसी, भोजपत्र, गूलर, बड़, समिधा, मोहनभोग (कड़ाह) ॥

| | |
|---|---|
| वसन्त=चैत्र, वैशाख । | शरद्=आश्विन, कार्तिक । |
| ग्रीष्म=ज्येष्ठ, आषाढ़ । | हेमन्त=मार्गशीर्ष, पौष । |
| वर्षा=श्रावण, भाद्रपद । | शिशिर=माघ, फाल्गुन । |

[ २८ ]

## स्थालीपाक

मोहनभोग (हलवा), खीर, भात, लड्डू आदि भी यज्ञ में प्रयुक्त होते हैं, परन्तु कोई चीज़

जो नमकीन, खटाई या मिर्च से सम्बन्धित हों यज्ञ के लिये निषिद्ध वस्तु हैं।

[ २५ ]

## आचमनमन्त्राः ।

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥

( इससे पहला आचमन करें )

हे भगवन् ! यह सुखप्रद जल प्राणियों का आश्रयभूत है, यह हमारा कथन शुभ हो।

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥

( इस से दूसरा आचमन )

हे अमर परब्रह्म ! तू जगत् का सर्वथा धारण करने वाला है।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

( इससे तीसरा आचमन )

हे परमेश्वर ! सत्यकर्म, यश, सम्पत्ति और ऐश्वर्य मुझ में विराजमान हो, यह शुभ वाणी है।

[ २६ ]

## अङ्गस्पर्शविधि

आचमन के पश्चात् इन सात मन्त्रों से अङ्ग स्पर्श करें।

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु ॥ १ ॥

( मुख को स्पर्श करें )

प्रभो ! मेरे मुख में बोलने की शक्ति रहे ।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ २ ॥

( दोनों नथुनों को स्पर्श करें )

परमेश्वर ! मेरे दोनों नथुनों में श्वास शक्ति रहे ।

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ ३ ॥

( दोनों आंखों को स्पर्श करें )

परमेश्वर मेरी दोनों आंखों में दृष्टि रहे ।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ ४ ॥

( दोनों कानों को स्पर्श करें )

परमेश्वर ! मेरे दोनों कानों में श्रवणशक्ति रहे ।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ ५ ॥

( दोनों भुजाओं को स्पर्श करें )

परमेश्वर ! मेरी भुजाओं में बल हो।

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥ ६ ॥

( दोनों जंघाओं को स्पर्श करें )

परमेश्वर ! मेरी दोनों जंघाओं में सामर्थ्य रहे।

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥ ७ ॥

( दाहिने हाथ से जल लेकर सारे शरीर पर छिड़के )

परमेश्वर ! मेरे सब अङ्ग रोग-रहित हों और सब शरीर विस्तार के साथ रहे।

[ २७ ]

## ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना के मंत्र ।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥

य० अ० ३० । मं० ३ ॥

अर्थ—हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कीजिये। जो कल्याणकारक गुण, कर्म स्वभाव वाले पदार्थ हैं, वे सब हमको प्राप्त कराइये।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

यजु॰ अ॰ १३। मं॰ ४ ॥

अर्थ—जो स्वप्रकाशरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रमा आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी, एक ही चेतन था, जो सब जगत् से पूर्व वर्तमान था जो इस भूमि सूर्यादि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप, शुद्ध परमात्मा के लिये ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

यजु० अ० २५ । मं० १३ ॥

अर्थ—जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा, समाज के बल को देने हारा, जिसकी सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसके प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं जिस का आश्रय ही मोक्षसुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

यजु० अ० २३ । मं० ३ ॥

अर्थ—जो प्राण वाले और अप्राणी रूप जगत् का अपनी अनन्त महिमा से एक ही विराजमान राजा है, जो मनुष्य और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, हम उस सुखस्वरूप, सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिये अपनी सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति करें।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥

यजु० अ० ३२। मं० ६ ॥

अर्थ—जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि को धारण किया है, जिस जगदीश्वर ने सुख दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है, जो आकाश में सब लोक लोकान्तरों को विशेष मान युक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक, कामना करने के योग्य

परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव, यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

अर्थ—हे सब प्रजा के स्वामिन्, परमात्मन्! आप से भिन्न दूसरा कोई इन सब उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों का तिरस्कार नहीं करता है। अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। जिस २ पदार्थ की कामना वाले हम लोग आपका आश्रय लेवें और वाँछा करें, उस २ की हमारी कामना सिद्ध होवे, जिससे हम लोग धनैश्वर्यों के स्वामी होवें।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ७ ॥

यजु० अ० ३२ । मं० १० ॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा हम लोगों को भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् के उत्पादक, सब कामों को पूर्ण करने हारा, लोक और उनके नाम, स्थान तथा उत्पत्ति आदि को जानता है । और जिस सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त हो के विद्वान् स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है । हम लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराण-मेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥

य० अ० ४० । मं० १६ ॥

अर्थ—हे स्वप्रकाश ! ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करने हारे ! सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जैसे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके हम लोगों को विज्ञान राज्यादि, ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये

अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हम से कुटिलता-युक्त पाप रूप कर्म को दूर कीजिये। इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुति सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

[ २८ ]

## अथ स्वस्तिवाचनम्

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

ऋ० मं० १। सू० १। मं० १॥

पहले से ही जगत् को धारण करने वाले, हवन विद्यादि दान और शिल्पक्रिया के प्रकाशक, प्रत्येक ऋतु में पूजनीय, जगत् के सुन्दर पदार्थों को देने वाले रमणीय रत्नादिकों के पोषण करने वाले की मैं (उपासक) स्तुति करता हूं।

ओं स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २ ॥

ऋ० मं० १ । सू० १ । मं० ६ ॥

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! जैसे पुत्र के लिए पिता ज्ञानदाता होता है, वैसे आप हमारे लिए सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हूजिये ॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः । स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥ ३ ॥

ऋ० ५ । ५१ । ११ ॥

हे ईश्वर ! अध्यापक और उपदेशक हमारे लिए कल्याण को करें, ऐश्वर्यरूप आपका वायु सुख का सम्पादन करे, अखंडित प्रकाशवाली विद्युत् विद्या हम लोगों के लिए कल्याण करे । पुष्टिकारक प्राणों को देने वाला मेघादि कल्याण को देवे । अन्तरिक्ष और पृथिवी अच्छे विज्ञान से युक्त हुए हमारे लिए कल्याणकारी हों ।

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ ४ ॥

ऋ० ५ । ५१ । १२ ॥

हे परमेश्वर ! शान्ति के लिए, हम वायुविद्या का उपदेश और ऐश्वर्य देने वाले चन्द्रमा की स्तुति करते हैं, जो चन्द्रमा ओषध्यादि रस का उत्पादक होने से संसार की रक्षा करने वाला है। कर्मों के रक्षक, सम्पूर्ण समूह वाले, आपका कल्याण के लिए आश्रय लेते हैं।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ ५ ॥

ऋ० ५ । ५१ । १३ ॥

आज यज्ञ के दिन हमारे आनन्द के लिए सब विद्वान् लोग और दिव्य पदार्थ वर्तमान हों और सर्वत्र वसने वाला अग्नि मङ्गल के लिए हो। हमारे

कल्याण के लिए दुष्टों को रुलाने वाले आप पापरूप अपराध से हमारी रक्षा करो।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ ६ ॥ ऋ० ५। ५१। १४ ॥

हे परमेश्वर ! हमारे लिए जल, वायु और विद्युत कल्याण करें। शुभ धनादि सम्पन्न मार्ग में हमारे लिए कल्याण हो और प्राण और उदान वायु हमारे लिये कल्याणकारी हों।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसा-विव। पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥७॥ ऋ० म० ५। सू० ५१। १५ ॥

हे ईश्वर ! कल्याण के मार्ग में आनन्द से हम लोग विचरें, जैसे सूर्य और चन्द्र बिना किसी उपद्रव के विचरण करते हैं। सहायता देने वाले, किसी को दुःख न देने वाले, ज्ञान-सम्पन्न के साथ हम मेल करें।

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

ऋ० ७ । ३५ । १५ ॥

जो यज्ञ के योग्य विद्वानों में यज्ञोपयोगी हैं, और मननशील पुरुषों के साथ संगति करनेवाले सत्यज्ञानी हैं; वे आप लोग आज योग के दिन बहुत कीर्ति वाले विद्या के उपदेश हमारे लिए देवें और आप सब कल्याणकारी पदार्थों से सब काल में हमारी रक्षा किया करें।

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरान् स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥ ९ ॥

ऋ० १० । ६३ । ३ ॥

जिन विद्वानों के लिए सब को निर्माण करने वाली पृथिवी माधुर्ययुक्त दुग्धादि पदार्थों को देती है, और अखण्डनीय मेघों से बढ़ा हुआ अन्तरिक्ष लोक

सुन्दर जलादि को देता है, अत्यंत बल वाले यज्ञ द्वारा वृष्टि का आहरण करने वाले उनको उपद्रव न होने के लिए प्राप्त कराइये।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतिरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥ १०॥ ऋ० १०। ६३। ४॥

मनुष्यों के द्रष्टा, आलस्य रहित लोगों के पूजनीय विद्वान् लोग हैं, जो कि अमर पद को प्राप्त हो चुके हैं, जो सुन्दर प्रकाशमय रथों से युक्त हैं, जिन की बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता, ऐसे पाप-रहित विद्वान् जो कि अन्तरिक्ष लोक के ऊंचे देश को ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं, हमारे कल्याण के लिए हों।

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये।११।
ऋ० १०। ६३। ५॥

अपने तेज से अच्छे प्रकार विराजमान ज्ञानादि से वृद्ध जो विद्वान् लोग यज्ञ को प्राप्त होते हैं और जो किसी से भी अपीड़ित देवता लोग बड़े २ स्थानों में निवास करते हैं, उन गुणों से अधिक भक्तों को हव्यान्न के साथ और अच्छी स्तुतियों के साथ कल्याण के लिए सेवन कराओ।

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद् यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ १२ ॥ ऋ० १० । ६३ । ६ ॥

जिस स्तुति-समूह का तुम सेवन करते हो, उस सामवेदोक्त स्तुति-समूह को तुम लोगों में कौन बनाता है? और हे अनेक प्रकार के जन्म वाले मननशील विद्वान् लोगो! तुम में कौन यज्ञ को अलंकृत करता है? जो यज्ञ हमारे पाप को हटा कर कल्याण के लिए हमारा पालन करता है, उसका विचार करो।

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धा-
ग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः। त आदित्या अभयं
शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥
ऋ० १० । ६३ । ७ ॥

जिसके कारण विद्वान् लोग बड़े २ यज्ञों द्वारा सम्मान करते हैं, वे भयरहित सुख को देवें और हमारे कल्याण के अच्छे प्रकार प्राप्तव्य वैदिक मार्गों को करें।

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य
स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नः कृतादकृतादेन-
सस्परि अद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥
ऋ० १० । ६३ । ८ ॥

जो विद्वान् लोग अच्छे ज्ञान वाले, सब के जानने वाले, स्थावर और जङ्गम, सब लोक के मालिक बनते हैं वे आज कल्याण के लिये किये और न किये हुए पाप से पार करें।

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽंहोमुचं सुकृतं दैव्यं

जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावा-
पृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥ ऋ० १०।६३।६॥

पाप के हटाने वाले शक्तिशाली विद्वान् को संग्रामों में अपनी रक्षा के लिये बुलावें और श्रेष्ठ कर्म वाले आस्तिक पुरुष को बुलावें और अन्नादि लाभ व अनुपद्रव के लिये अग्नि विद्या, प्राण विद्या सेवनीय जलविद्या, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी की विद्या और वायुविद्या का हम सेवन करें।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्मा-
णमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रा-
मनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥
ऋ० १० । ६३ । १० ॥

अच्छे प्रकार रक्षा करने वाली, लम्बी चौड़ी, उपद्रव रहित, अच्छा सुख देने वाली, जो अच्छे प्रकार बनाई गई सुन्दर यन्त्रों से युक्त, दृढ़, विद्युत् सम्बन्धी नौका के ऊपर अर्थात् विमान के ऊपर हम लोग सुख के लिये चढ़ें।

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥

ऋ० । १० । ६३ । ११ ॥

हे पूजनीय विद्वानो ! हमारी रक्षा के लिये आप उपदेश किया करें। और पीड़ा देने वाली दुर्गति से हमारी रक्षा करें। हे विद्वान् लोगो ! हम शत्रुओं से रक्षा और सुख के लिये आप को बुलाया करें।

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥

ऋ० १० । ६३ । १२ ॥

हे विद्वान् लोगो ! रोगादि को पृथक् करो, पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की दुष्टबुद्धि को दूर करो, द्वेष करने वाले सबों को हम से पृथक् करो, हमारे लिये बहुत सुख दो।

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजा-
भिर्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा
सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १९॥
ऋ० १० । ६३ । १३ ॥

जिन पुरुषों को अच्छी नीतियों से पापों को उलंघन करके सन्मार्ग में प्रवृत्ति करने की इच्छा होती है, वे सब पुरुष किसी से पीड़ित न होकर बढ़ते हैं, सब धर्मानुष्ठान के बाद पुत्र पौत्रादिकों से अच्छी तरह प्रकट होते हैं।

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता
मरुतो हिते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सान-
सिमरिष्यन्तमारुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥
ऋ० १० । ६३ । १४ ॥

हे विद्वान् लोगो ! अन्न के लाभ के लिये जिस रमणीय, गमनसाधन वाष्पयानादि की रक्षा करते हो और रक्खे हुए धन के कारण संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो बड़े यन्त्रालय के विद्वानों से

भी सेवनीय, प्रातःकाल से ही गमन करने वाले उसी रथ पर हम कल्याण के लिये चढ़ें ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ २१ ॥

ऋ० २० । ६३ । १५ ॥

हमारे लिये राजमार्ग में कल्याण हो, जल-रहित देश में जल की उत्पत्तिरूप कल्याण हो, और सब आयुधों से युक्त शत्रुओं को दबानेवाली सेना में कल्याण हो और हमारे पुत्रों के करनेवाले उत्पत्ति स्थान में कल्याण हो और गवादि धन के लिये कल्याण हो ।

स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति । सा नो अमासो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ॥ २२ ॥

ऋ० १० । ६३ । १६ ॥

जो समुद्र और पृथिवी जानेवालों के अच्छ

मार्ग के लिये कल्याणकारिणी ही होती है और जो अति सुन्दर धन वाली है तथा सेवन के योग्य यज्ञ को प्राप्त होती है वह समृद्धि हमारे गृह की रक्षा करे, वही वन आदि देशों में हमारी रक्षिका हो और हमारे अच्छे स्थान वाली हो।

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं। प्रजावती रनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहिं ॥२३॥

यजु० अ० १। मं० १॥

हे ईश्वर! अन्नादि इष्ट पदार्थों के लिये तुमको आश्रय करते हैं। बलादि के लिये तुमको आश्रय करते हैं। हे वत्स जीवो! तुम वायु सदृश पराक्रम करने वाले हो। सब जगत् का उत्पादक देव, यज्ञरूप श्रेष्ठ कर्म के लिये तुम सबों को सम्बद्ध करे। उस यज्ञ द्वारा अपने ऐश्वर्य के भाग

को बढ़ाओ, यज्ञ-सम्पादन के लिये न मारने योग्य बछड़ों सहित व्याधि विशेषों से रहित, यक्ष्मा-तपेदिक आदि बड़े रोगों से शून्य तुम लोगों के बीच, जो चौर्यादि दुष्ट गुणों से युक्त हो, वह उन गौओं का मालिक न बने और अन्य पापी भी उनका रक्षक न बने। ऐसा यत्न करो जिससे बहुतसी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गौएं निर्दिष्ट गोरक्षक के पास बनी रहें और परमात्मा से प्रार्थना करो कि यज्ञ करने वाले के पशुओं की हे ईश्वर! तुम रक्षा करो।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ २४ ॥ ऋ० ७। ८६। १ ॥ य० २५। १४ ॥

हमें शुभ सङ्कल्प प्राप्त हों। सर्वोत्तम दुःखनाशक विद्वान् लोग सर्वदा वृद्धि के लिये ही हों, तथा उन्हें प्रतिदिन प्रमादशून्य रक्षा करने वाले बनाओ।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳪं रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानाᳪं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५॥

ऋ० १ । ८९ । २ ॥ य० २५ । २५ ॥

सरलतया आचरण करने वालों, विद्वान् का कल्याण करने वाली अच्छी बुद्धि हम को प्राप्त हो, और विद्वानों को विद्यादि पदार्थों का दान प्राप्त हो, विद्वानों के मित्रभाव को हम प्राप्त हों। जिससे कि वे देवता लोग हमारी अवस्था को दीर्घकाल पर्यन्त जीने के लिये बढ़ावें।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥

ऋ० १ । ८९ । ५ ॥ य० २५ । १८ ॥

हम लोग ऐश्वर्य वाले चर और अचर जगत् के पति, बुद्धि से प्रसन्न करने वाले परमात्मा की अपनी रक्षा के लिये स्तुति करते हैं जिससे कि वह पुष्टि-

कर्त्ता धनों की वृद्धि के लिये हो। सामान्यतया रक्षक और कार्यों का साधक परमात्मा कल्याण के लिये हो।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥

ऋ० १। ८९। ६ ॥ य० १५। १९ ॥

परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर हमारे लिये कल्याण को स्थापन करे और पुष्टि करने वाला सर्वज्ञाता ईश्वर हमारे लिये कल्याण को धारण करे। तीक्ष्ण, तेजस्वी, दुःखहर्ता ईश्वर हमारा कल्याण करे। बड़े २ पदार्थों का पति हमारे लिये कल्याण को धारण करे।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांᳪसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥

ऋ० १। ८९। ८ ॥ यजु० अ० २५। मं० १ ॥

विद्वान् लोगो ! हम कानों से शुभ ही सुनें, नेत्रों से अच्छी वस्तुओं को देखें, दृढ अंगों से आप की स्तुति करने वाले हम लोग शरीरों से अथवा मर्यादा के साथ विद्वानों के लिए कल्याणकारी जो आयु है उसको अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ २९ ॥ ऋ० साम० आ० प्रपा० १।१॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! ज्ञान के लिये प्रशंसित हुए आप देवताओं के लिये हव्य देने को प्राप्त हूजिये। सब पदार्थों के लिये ग्रहण करने वाले आप यज्ञादि शुभकर्मों में स्मरणादि द्वारा हमारे हृदयों में स्थित हूजिये।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने ॥ ३० ॥ सा० छन्द आ० प्रपा० मं० १।२॥

हे पूजनीयेश्वर ! तू छोटे बड़े सब यज्ञों का उपदेष्टा है। विद्वान् लोगों से विचारशील पुरुषों में भक्ति की उत्पत्ति के द्वारा तुम स्थित किये जाते हो।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥ अथर्व० कां० १। अनु० १। सू० १। मं० १॥

तीन रजस, तमस और सत्वगुण तथा सात ग्रह अथवा तीन-सात अर्थात् ५ महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्रमाण, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण जो सब चराचरात्मक वस्तुओं को अभिमत फल देकर पोषण करते हुए यथोचित लोट पोट होते रहते हैं उनके सम्बन्धी मेरे शरीर में बलों को आज वेदात्मक वाणी का पति परमेश्वर धारण करे।

[ २६ ]

## अथ शान्तिप्रकरणम्

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥
ऋ० ७ । ३५ । १ ॥ अ० १६ । १० । १ ॥

हे ईश्वर ! बिजली और अग्नि रक्षा सामग्री के द्वारा हमें सुखकारक हों । बिजली और जल हमें सुखकारी हों, सुखदायक सूर्य और चन्द्रमा उत्तम धन के लिये रोगनाशक और भय निवर्त्तक हों । बिजली और पवन पराक्रम के लाभ में हमें सुखदायक हों ।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥ ऋ० ७ । ३५ । २ ॥ अ० १६ । ११ । २ ॥

भगवन्! हमारा ऐश्वर्य शान्तिदायक हो और हमारी प्रशंसा शान्तिदायक हो, हमारी बुद्धि शान्तिदायक हो और सब प्रकार के धन शान्तिदायक हों। शासन शान्तिदायक हो। हमारा बहुत प्रसिद्ध श्रेष्ठों का मान करने द्वारा न्यायकारी भगवान् शान्तिदायक हो।

शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः। शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥
ऋ० ७। ३५। ३॥ अ० १६। १०। ३॥

धारण करने वाला ईश्वर हमें शान्तिकारक हो। दिशाएं हमें बहुत अन्नों से शान्तिकारक हों। बहुत विस्तार वाले भूमि और सूर्य दोनों शान्तिकारक हों। मेघ अथवा पहाड़ हमें शान्तिकारक हों, विद्वान् जनों के सुन्दर बुलावे हमें शान्तिकारक हों।

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्। शं नः सुकृतां

सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥ ४ ॥ ऋ० ७ । ३५ । ४ ॥

प्रकाशस्वरूप परमेश्वर हमारे लिये शान्तिकारक हो, दिन और रात हमारे लिये सुखकारक हों, सूर्य और चन्द्रमा शान्तिकारक हों, शुभकर्म हमारे लिये शान्तिकारक हों, पवन हमारे चारों ओर चले ।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

ऋ० ७ । ३५ । ५ ॥

पहले बुलावे अर्थात् कार्य के आरम्भ में सूर्य, भूमि और मध्यलोक शांतिदायक हों । ओषधियां अन्नादि और वन के पदार्थ हमें शान्तिदायक हों ।

शं नो इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शं नो रुद्रो रुद्रे-

भिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥
ऋ० ७ । ३५ ॥

सूर्य हमें सुखदायक हो, जल सूर्य की किरणों के साथ सुखदायक हो, ज्ञानदाता आचार्य मुनियों के द्वारा हमें सुखदायक हों, परमेश्वर हमारी वाणियों द्वारा यहां पर हमारी प्रार्थना सुने ।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥
ऋ० ७ । ३५ । ७ ॥

चन्द्रमा हमें सुखदायक हो, यज्ञ सुखदायक हों, ओषधियां हमें सुखदायक हों और वेदि सुखदायक हो ।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥
ऋ० ७ । ३५ । ८ ॥

सूर्य हमें सुखदायक उदय हो, चारों दिशायें हमें सुखदायक हों, पहाड़ हमें सुखदायक हों, समुद्र हमें सुखदायक हों और जल वा प्राण सुखदायक हो।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥ ९॥

ऋ० ७।३५।९॥

वेदविद्या व धरती माता हमें सुखदायक हो, विद्वान् लोग हमें सुखदायक हों; सूर्य हमें सुखदायक हो और भूमि सुखदायक हो, अन्तरिक्ष वा जल हमें सुखदायक हो और पवन सुखदायक हो।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥१०॥

ऋ० ७।३५।१०॥

रक्षक परमात्मा हमें सुखदायक हो, जगमगाती हुई प्रभात वेलायें हमें सुखदायक हों, बादल हमें

सुखदायक हों, खेत का स्वामी किसान हमें सुख-
दायक हो।

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती
सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः
शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः॥ ११॥

ऋ० ७। ३५। ११॥ अ० १६। ११। २॥

विद्वज्जन हमें सुखदायक हों, वेदविद्या सुख-
दायक हो और दान की वर्षा करनेहारे सुखदायक
हों, आकाश के पदार्थ और पृथिवी के पदार्थ हमें
सुखदायक हों, जलसम्बन्धी पदार्थ हमें सुख-
दायक हों।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो
अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं न ऋभवः सुकृतः
सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु॥ १२॥

ऋ० ७। ३५। १२॥ अ० १६। ११। १॥

सत्यपक्ष हमें सुखदायक हों, घोड़े हमें सुख-
दायक हों और गौएं सुखदायक हों, बुद्धिमान् बड़े

घड़े काम करने हारे हस्तकार्य में चतुर लोग हमें सुखदायक हों, रचा करने हारे यज्ञों में माता पिता आदि हमें सुखदायक हों।

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥ १३ ॥

ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १३॥

जगत्पाद, अजन्मा, व्यापक, भगवान् हमें शान्तिदायक हों, न हारने वाला, सब मूलतत्त्वों का साधक हमें शान्तिदायक हो, सब का सींचने वाला ईश्वर शान्तिदायक हो, प्रजाओं को पार करने हारा परमात्मा हमें शान्तिदायक हो, विद्वानों का रक्षक परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो।

इन्द्रो विश्वस्य राजति शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४ ॥ य० ३६। ८॥

परमेश्वर ! आप हमें और हमारे दोपाये मनु-

ष्यादि के लिये सुखकारक हों और चौपाये गौ आदि पशुओं के लिये सुखकारक हों।

शं नो वातः पवताᳪ शं नस्तपतु सूर्य्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥१५॥ य० ३६। १० ॥

परमेश्वर! पवन हमको सुखकारी हो, सूर्य हमको तपावे, सुखकारी उत्तम गुण वाले बादल हमारे लिये सब ओर से वर्षा करें।

अहानि शं भवन्तु नः शᳪ रात्रीः प्रति-धीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥ १६ ॥ य० ३६। ११ ॥

परमात्मन्! दिन हमें सुखकारी हों, रातें सुख के लिये हों, बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि दोनों रक्षा सामग्री से हमें सुखकारक हों, जल, बिजली और ओषधि वर्गों के लाभ से हमें सुखकारी हों, सुख-

दायक बिजली और पृथिवी उत्तम धन के लिये रोगनाशक और भय निवर्त्तक हों।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ १७ ॥ य० ३६ । १२ ॥

हे जगदीश्वर! दिव्य गुण से युक्त जल हमारे पूर्ण यज्ञ वा सुख पाने के लिये आनन्ददायक हों और रोगनाशक और भय निवर्त्तक होकर हमारे ऊपर सुख की वर्षा करें।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शांतिः। सर्वं शांतिः शांतिरेव शांतिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥

य० ३६ । १७ ॥ अ० १९ । ९ । १४ ॥

प्रकाशमान सूर्य आदि लोक सुखदायक हों, मध्य लोक सुखदायक हों, भूलोक सुखदायक हों और सब अन्य ओषधियें सुखदायक हों, सब वृक्ष

सुखदायक हों, सब दिव्य जीव और दिव्य पदार्थ सुखदायक हों। ईश्वर, वेद विद्या वा जितेन्द्रियता सुखदायक हों, यह सब सुखदायक हों और इन से अतिरिक्त सब ही सुखदायक हों, शान्ति देवी मुझ को प्राप्त हो।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं। प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥१६॥

यजु० ३६। २४॥

सब को देखने हारे, विद्वानों के हितकारी, पहले काल से उदय होते हुए बीजरूप परब्रह्म को सौ वर्ष तक हम जीते हुए देखते रहें, सौ वर्ष तक हम सुनते रहें सौ वर्ष तक बोलते रहें, सौ वर्ष तक स्वतन्त्रता से रहें और सौ वर्ष से अधिक तक हम यह सब व्यवहार करते रहें।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य

तथैवैति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २० ॥ यजु० ३४ । १ ॥

हे परमात्मन्! जो जागते हुए पुरुष का दिव्य गुण वाला मन दूर ऊंचा चढ़ जाता है और वही मन सोते हुए का उसी प्रकार चलता रहता है। जो दूर २ ले जाने वाले विषय प्रकाशक इन्द्रियों का एक प्रकाशक है, वह मेरा मन धार्मिक विचार वाला हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २१ ॥
य० ३४ । २ ॥

जिस मन द्वारा कर्म के जानने हारे धीर पुरुष यज्ञ अर्थात् धर्म व्यवहार में विद्वानों के बीच कर्मों को करते हैं और प्राणियों के भीतर अद्वितीय और पूजनीय हैं, वह मेरा मन शुभ विचारने वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योति-

रन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २२ ॥
य० ३४ । ३ ॥

जो मन बुद्धि का उत्पादक तथा स्मरण शक्ति का आधार है, जो जीती जागती ज्योति प्राणियों के भीतर है जिसके बिना कुछ भी काम नहीं किया जाता है, वह मेरा मन शुभ विचार वाला हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २३ ॥ य० ३४ । ४ ॥

प्रभो ! जिस जीवन मरण रहित मन के द्वारा तीनों काल का सब वृत्तान्त सर्वथा जाना जाता है। और जिसके द्वारा सात हवन करने वालों से पूरा किया हुआ पूजनीय कर्म फैलाया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रति-

ष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तᳪ सर्व-
मोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२४॥
य० ३४ । ५ ॥

परमात्मन् ! जिस मन में चारों वेदों का ज्ञान इस प्रकार विद्यमान है जैसे रथ के पहिये के धुरे में अरे लगे रहते हैं । जिस में प्राणियों का सब विचार बना हुआ है; वह मेरा मन भलाई का ही विचार करने वाला हो ।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽ-
भीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं
जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २५ ॥
य० ३४ । ६ ॥

प्रभो ! जो मन मनुष्यों को लगातार लिये फिरता है, जैसे चतुर सारथी बागडोर से वेग वाले घोड़ों को, जो हृदय में ठहरा हुआ, सब का चलाने वाला बड़ा ही वेग वाला है, वह मेरा मन मंगल विचारयुक्त हो ।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥

ऋ० ९ । ११ । ३ ॥ साम० उ० प्र० १ ॥

हे परमेश्वर ! गौओं की रक्षा के लिये, मनुष्यों की रक्षा के लिये और अन्न और सोम आदि ओषधियों की रक्षा के लिये हमें सामर्थ्य दे ।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥

अ० १९ । १५ । ५ ॥

हे भगवन् ! हमें मध्यलोक अभय करे, यह दोनों सूर्य और भूलोक अभय करें, पश्चिम में अभय हो, उत्तर और दक्षिण में हमारे लिए अभय हो ।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ २८ ॥

अभय प्रभो ! हमें मित्र से अभय और अजान-
कार से अभय हो, हमारे लिये रात्रि में अभय हो,
मेरी सब आशाएँ वा दिशाएँ हितकारी हों।

[ ३० ]

## सामान्य प्रकरण

अथाग्न्याधानमन्त्राः।

निम्नलिखित मन्त्र से अग्नि प्रदीप्त करें—

ओं भूर्भुवः स्वः

गोभिल गृ० प्र० १। खं० १। सूक्त ११॥

फिर अगले मन्त्र को बोल कर उस अग्नि को
हवनकुण्ड में रखदें।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवी-
वव्वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि
पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥१॥ य० ३। ५॥

परमेश्वर सब का आधार, सब में व्यापक,
सुखस्वरूप है। वह परमेश्वर संसार के लिये गृहस्थ

के कारण आकाश के समान और फैलाव से पृथिवी के समान है। हे भगवन् ! यह पृथिवी, जो देवताओं का यज्ञस्थान है, उस की पीठ पर हव्य खाने हारे भौतिक अग्नि को खाने योग्य अन्न की प्राप्ति के लिये मैं स्थापित करता हूं।

इस मन्त्र से वेदी में अग्नि को खूब प्रज्वलित करें।

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ २ ॥ यजु० १५। ५४॥

हे विद्वान् यजमान ! तू उत्तम रीति से चैतन्य को प्राप्त हो और प्रत्यक्ष जागृत हो। हे यजमान ! तू और यह यज्ञ, दोनों इष्ट अर्थात् वेदाध्ययन, आतिथ्य आदि और पूर्त प्याऊ, बगीचा, धर्मशाला आदि कर्मों से संसर्ग करो। हे सब विद्वान् जनो ! तुम सब इस उत्तम समाज में अधिकार पूर्वक बैठो।

## समिदाधानम् ।

फिर नीचे लिखे मन्त्रों के साथ आठ २ अंगुल लकड़ी की तीन समिधा, घृत में भिगो भिगो कर तीन वार कुण्ड में डालनी चाहियें ।

**ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने-ध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे । इदन्न मम ॥ १ ॥**

( इससे एक समिधा )

हे सब पदार्थों में विद्यामान परमेश्वर ! यह मेरा आत्मा तेरे लिए इंधन रूप है । इस से मुझ में तू प्रकाशित हो और यह अवश्य ही बढ़े । हम को तू बढ़ा और पुत्र पौत्र, सेवक आदि प्रजा से, गौ आदि पशुओं से, वेदविद्या के तेज से और भोग्य धान्य, घृत, दुग्ध आदि अन्न से समृद्ध कर । यह सुन्दर आहुति है । यह सम्पूर्ण पदार्थों में

विद्यमान ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिये है। यह मेरे लिये नहीं है।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ २ ॥

ईंधन से और घृत से व्यापनशील अग्नि को तुम सब पूजो और चेताओ। इस में हवन सामग्री को यथाविधि चढ़ाओ। यह सुन्दर आहुति है। यह आत्मसमर्पण परमेश्वर के लिये है। यह मेरे लिए नहीं है।

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे। इदन्न मम ॥ ३ ॥

अच्छे प्रकार प्रदीप्त संशोधक पदार्थों में विद्यमान अग्नि के लिये तपाया हुआ घृत तुम चढ़ाओ। यह सुन्दर आहुति है यह सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान परमेश्वर के लिये है, मेरे लिए नहीं है।

( इन दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा )

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे, इदं न मम। ३॥ य० ३। ३॥

( इससे तीसरी समिधा )

इस व्यापनशील अग्नि को इंधनों से और घृत से हम बढ़ाते हैं। यह जो अत्यन्त संयोजक है, यह बहुत प्रज्वलित हो। यह सुन्दर आहुति है। यह परमेश्वर के लिये है, मेरे लिये नहीं।

स्रुवा को अंगुष्ठ, मध्यमा और अनामिका से पकड़कर घृताहुति देवें। प्रत्येक आहुति से स्रुवा के बचे घृत को जलपात्र में इकट्ठा करते जायें। प्रज्वलित अग्नि में नीचे के मन्त्र से पांच घृताहुति दें।

घृताहुति

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया

पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।
इदमग्नये जातवेदसे, इदन्न मम ॥ १ ॥

इस मन्त्र से ५ घृताहुति देनी चाहियें।

हे सब पदार्थों में विद्यमान परमेश्वर! यह मेरा आत्मा तेरे लिये इंधनरूप है। इससे मुझ में तू प्रकाशित हो और अवश्य ही बढ़। और हमको तू बढ़ा और पुत्र पौत्र, सेवक आदि सब प्रजा से, गौ आदि पशुओं से, वेद-विद्या के तेज से और भोग्य धान्य, घृत, दुग्ध आदि अन्न से समृद्ध कर। यह सुन्दर आहुति है। यह परमेश्वर के लिये है, मेरे लिये नहीं है।

## जलप्रसेचनम्

तब दाहिनी अञ्जलि में जल लेके इन मन्त्रों से वेदी के चारों ओर छिड़कें।

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥ १ ॥
( इससे पूर्व दिशा में )

हे अखण्ड परमेश्वर ! आप प्रसन्न होकर हमें अनुकूल मति दीजिये ।

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ २ ॥

( इससे पश्चिम में )

हे हितकारी बुद्धिवाले ईश्वर ! आप हमें भी हितकारिणी मति दीजिये ।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ ३ ॥

( इससे उत्तर में )

हे सब विद्याओं के भण्डार जगदीश्वर ! आप प्रसन्न होकर हमें प्रसन्नता दीजिये ।

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञ-पतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ४ ॥

य० अ० ३० । ४ ॥

( इससे चारों ओर )

हे प्रकाशमय, सब के चलानेहारे परमेश्वर ! इस यज्ञ वा उत्तम कर्म को आगे बढ़ा और यज्ञ के

रक्षक यजमान को ऐश्वर्य की सिद्धि के लिये आगे बढ़ा। अद्भुत स्वभाव, विद्याओं का आधार, बुद्धि शुद्ध करने हारा परमेश्वर हमारी बुद्धि की शुद्धि करे। विद्या का स्वामी परमात्मा हमारी विद्या को मधुर करे।

( आघारावाज्याहुति )

फिर निम्नलिखित मन्त्रों से दो घृताहुति देवें।

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥ य० ५२ । १७ ॥

( वेदी के उत्तर भाग में )

सर्वेश्वर परमेश्वर के लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं।

ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय, इदं न मम ॥ य० २२ । २८ ॥

( वेदी के दक्षिण भाग में )

सौम्य स्वभाव परमेश्वर के लिये यह सुन्दर आहुति है, मेरे लिये नहीं।

## आज्यभागाहुतिः

( इनसे मध्य में घृताहुति )

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥ १ ॥ यजु० २२ । ३२ ॥

प्रजापालक ईश्वर के लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं।

ओं इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्न-मम ॥ २ ॥ यजु० २२ । २७ ॥

परम ऐश्वर्य वाले परमात्मा के लिये यह आहुति है, मेरे लिये नहीं।

## २ महाव्याहृति-आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम ॥ २ ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओं भुर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः, इदन्न मम ॥ ४ ॥

सर्वाधार अग्नि के लिये, दुःखनाशक वायु समान व्यापक के लिये, सुखस्वरूप, प्रकाशस्वरूप के लिये, इन सब गुणों से युक्त प्रभु के लिये (उसकी प्रीति का पात्र बनने के भाव से) सच्चे हृदय से मैं आहुति देता हूं। प्रभो आप स्वीकार करें।

## २ स्विष्टकृत आहुति

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्, अग्निष्टत् स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते, इदन्न मम ॥ ५ ॥

मैं जो कुछ इस कर्म के सम्बन्ध में विधि से अधिक कर चुका हूं या इसमें कम कर बैठा हूं। सब को पूर्ण करने वाला तौतिक और

आत्मिक अग्नि मेरा यह अच्छे प्रकार यज्ञ किया हुआ अच्छे प्रकार होम हुआ करे। अग्नि के लिये जो यज्ञ को ठीक बनाने वाला, आहुति को ठीक करने वाला, सारी पाप की प्रतिक रूप आहुतियों का सब कामनाओं को सफल करने वाला है, यह आहुति दे रहा हूं।

हे अग्ने! हमारी सारी कामनाओं को परिपूर्ण करो। यह मेरी वाणी सत्य हो। यह स्विष्टकृत् अग्नि के लिये समर्पण कर चुका हूं, इस पर मेरा कोई स्वत्व नहीं।

४ प्राजापत्याहुति

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये, इदन्न मम ॥ ६ ॥

यह आहुति प्रजापति परमात्मा के लिये है, मेरे लिये नहीं।

५. अब प्रधान होम सम्बन्धी चार आहुतियां इन मन्त्रों से देवें—

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय, इदन्न मम ॥१॥

हे सर्वाधार, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, प्रकाश-स्वरूप भगवन् ! हमारे जीवनों को पवित्र करते तथा बढ़ाते हो । हमें बल और अन्न प्रदान करो । राक्षसों को दूर भगाओ । मेरी यह वाणी सत्य हो । यह होम पवित्र करने वाले अग्निस्वरूप प्रभु के लिये है, मेरे लिये नहीं ।

ओं भूर्भुवः स्वः अग्निर्ऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय, इदन्न मम ॥२॥

ऋ० ६ । ६६ । २० ॥

अग्नि सब का देखने वाला, पवित्र करने वाला, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और आर्य वर्ण से बाहिर भी सब प्रजाओं के पालन करने वाला सब धार्मिक कार्यों में प्रमुख होकर सहायता करने वाला,

अत्यन्त बलवान् है। उसे हम सब धर्म, कर्म की सफलता के लिये प्राप्त होते हैं।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्नेः पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥३॥

ऋ० ९। ६६। २१॥

हे सर्वाधार, दुःखापहारक, प्रकाशमान प्रभो! आप अच्छे कर्मों के अधिष्ठाता हैं। आप तेज से पूर्ण बल, ऐश्वर्य और पुष्टि मुझ में धारण करते हुए पवित्र करें।

ओं भुर्भूवः स्वः। प्रजापते न त्वदेता-न्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम॥४॥

ऋ० १०। १२१। १०॥

हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मन्! आप से भिन्न दूसरा कोई और इन सब उत्पन्न हुए जड़,

चेतनादिकों को नहीं दबा कर रखता है। जिस २ पदार्थ की कामना वाले हम लोग आपका आश्रय लेवें, वह २ कामना हमारी सिद्ध हो, जिससे हम धन ऐश्वर्यों के स्वामी होवें।

साधारण हवन में तथा अन्य संस्कारों में विशेष २ अवसर पर निम्नलिखित आठ आज्याहुतियां इन आठ मन्त्रों से दिया करें—

ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् इदन्न मम॥१॥ ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४॥ पार० का० १। क० २। सू० ८॥

हे अग्ने! सुखस्वरूप! परमात्मन्! आप कर्मों के फलदाता, वरुण के हमारे ऊपर क्रोध को जानने वाले! आप उस क्रोध को दूर करने का उपाय करो और यजनशील तथा यज्ञीय भागों को ग्रहन

करने वाले आप अत्यन्त दीप्त होकर हमारे सम्पूर्ण पापों को हम से पृथक् करो।

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवेती नेदिष्ठो अस्या उपसो व्युष्टौ अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां इदन्न मम ॥ २ ॥

ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ५ ॥

हे अग्ने! परमात्मन्! हमारे सदा से रक्षक आप आज के प्रातःकाल की यज्ञादि की सिद्धि के लिये समीपवर्ती हूजिये। हम लोगों के लिये श्रेष्ठ उपदेशकों को दीजिये और फिर इस प्रकार हमारे सुखदायक यज्ञीय भाग को प्राप्त कीजिये।

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम ॥ ३ ॥

ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १६ ॥

हे वरुण! तुम आज मेरी इस प्रार्थना को

सुनो और मुझे सुखी करो। रक्षार्थ मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं।

ओं तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय इदन्न मम॥ ४॥

ऋ० मं० १। सू० १४। मं० ११॥

हे जगत्प्रभो! हवि आदि देकर जिस आयु की यजमान लोग तुम्हारा सत्कार करते हुए आशा करते हैं, उस ही प्रसिद्ध सौ वर्ष की आयु को मैं भी तुम से मांगता हूं। हे महाराज! उस सौ वर्ष की आयु में से कुछ भी कम मत कीजिये।

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशाः वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्न मम॥५॥

हे वरुण ! यज्ञ के जो सैंकड़ों और हज़ारों बड़े २ विघ्न हैं, उनसे आप और विद्वान् लोग हम को दूर रक्खें।

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्व मयासि। अयानो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥ इदमग्नये अयसे। इदन्न मम॥ ६॥

हे कल्याणकारक अग्ने ! तुम सब जगह व्यापक और कुत्सित कर्म करने वालों को पवित्र करने वाले हो। हे अग्ने ! तुम हमारे यज्ञीय भागों को जल आदि देवताओं के लिये वहन करते हो, हम को सुखकारक वायु ओषधि दीजिये।

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमम् विमध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्यव्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च। इदन्न मम॥ ७॥

ऋ० मं० १। सू० २४। मं० १३॥

हे वरुण! आप हमारे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट बन्धन को ढीला कीजिये और फिर हम लोग तुम्हारे शासन में पाप कर्मों से अलग रह कर मुक्ति-सुख के लिये यत्न करते रहें।

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्यां। इदन्न मम॥ ८॥

हे परमात्मन्! समान मन वाले, एक दूसरे के सहायक तथा हमारे अनिष्ट चिन्तन से रहित हूजिये। हमारे यज्ञ तथा यज्ञपति को पीड़ा न पहुंचाइये और हमारे लिये कल्याणकारक हूजिये।

बृहद् हवन में शान्तिपाठ से पहले निम्न-लिखित मन्त्रों से भी आहुति दी जा सकती है।

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम॥१॥

ओं वायो व्रतपते० स्वाहा (इदं वायवे इदन्न मम)॥ २॥

ओं सूर्य व्रतपते० स्वाहा (इदं सूर्याय इदन्न मम)॥ ३॥

ओं चंद्र व्रतपते० स्वाहा (इदं चंद्राय इदन्न मम)॥ ४॥

ओं व्रतानां व्रतपते० स्वाहा (इदमिन्द्राय व्रतपतये इदन्न ममं)॥५॥ मं० ब्रा० १।६ ६—१३॥

## पूर्णाहुतिमन्त्रः

ओं पूर्णां दर्वि परापत सुपूर्णां पुनरापत वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं॑ शतक्रतो स्वाहा॥ ओं सर्वं वै पूर्णं॑ स्वाहा।

इस वाक्य को तीन वार पढ़कर तीन आहुति देना।

इन मन्त्रों से घृत मिश्रित जल को हाथों में लगा और सेंक कर मुंह और शिर में लगाओ।

ओं तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ॥१॥

ओं आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ॥२॥

ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥

ओं अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्म आपृण ॥४॥

ओं मेधां मे सविता आदधातु ॥ ५ ॥

ओं मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥६॥

ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर-स्रजौ ॥ ७ ॥

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इंन्द्रियं दधातु । मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु । यत्ते अग्नेतेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥

तै० आर० अ० ४२ ॥

## ईश्वर-भजन

( १ )

आज मिल सब गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद ।
जिसका यश नित गाते हैं, गन्धर्व मुनिजन धन्यवाद ॥
मन्दिरों में कन्दरों में, पर्वतों के शिखर पर ।
देते हैं लगातार सौ सौ वार, मुनिवर धन्यवाद ॥
करते हैं जङ्गल में मंगल, पक्षिगण हर शाख पर ।
पाते हैं आनन्द मिल, गाते हैं, स्वर भर धन्यवाद ॥
कूप में, तालाब में, सागर की गहरी धार में ।
प्रेमरस में तृप्त हो, करते हैं जलचर धन्यवाद ॥
शादियों में, कीर्तनों में, यज्ञ, उत्सव आदि में ।
मीठे स्वर से चाहिये, करें नारि नर सब धन्यवाद ॥
गानकर 'अमीचन्द' भजनानन्द ईश्वर-स्तुति ।
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता, कान धर धर धन्यवाद ॥

( २ )

मुझे वेदधर्म से हे पितः !
सदा इस तरह का प्यार दे ।

कि न मोड़ूं मुंह कभी उससे मैं,
कोई चाहे सिर भी उतार दे ॥
वह कलेजा राम को जो दिया,
वह जिगर जो बुद्ध को अता किया ।
वह फ़राख़ दिल दयानन्द का,
घड़ी भर मुझे भी उधार दे ॥
न हो दुश्मनों से मुझे गिला,
करूं मैं बदी की जगह भला ।
मेरे दिल से निकले सदा दुआ,
कोई चाहे कष्ट हज़ार दे ॥
नहीं मुझको ख़्वाहिशे-मर्तबा,
न है मालो ज़र की हविस मुझे ।
मेरी उम्र ख़िदमते ख़ल्क़ में,
परमात्मा ! तू गुज़ार दे ॥
मुझे प्राणिमात्र के वास्ते,
करो सोज़े दिल वह अता पिता ।
जलूं उनके ग़म में मैं इस तरह,
कि न ख़ाक तक भी ग़ुबार दे ॥

मेरी ऐसी ज़िन्दगी हो बसर,
कि हूं सुर्ख़रू तेरे सामने ।
न कहीं मुझे मेरा आत्मा ही,
यह शर्म लिलो निहार दे ॥
न किसी का मर्तबा देखकर,
जले दिल में नारे हसद कभी ।
जहां पर रहूं रहूं शान्त मैं,
मुझे ऐसा सब्रोक़रार दे ॥
लगे ज़ख्म दिल पै अगर किसी के,
तो मेरे दिल में तड़प उठे ।
मुझे ऐसा दे दिले दर्दरस,
मुझे ऐसा सीना फ़िगार दे ॥
है 'प्रेम' की यही कामना,
यही एक उसकी है आरज़ू ।
कि वह चन्दरोज़ा हयात को,
तेरी याद ही में गुज़ार दे ॥

( ३ )

जीवन ! बन तू फूल समान

पर उपकार सुरभि से सुरभित,
सन्तत हो सुखदान ।
स्वच्छ हृदय तो खिल जा प्यारे !
तू भी परम प्रेम को धारे ।
सुखदाई हो सब का जग में,
पास बसे सम्मान ॥ जीवन बन०
कठिन कण्टकों के घेरे में,
दारुण दुखदायी फेरे में ।
पड़कर विचलित कहीं न होना,
बनना नहीं अज्ञान ॥ जीवन बन०
शत्रु मित्र दोनों का हित हो,
पावन यह शुभ तेरा व्रत हो ।
मधुदाता बन सब का प्यारा,
तजकर भेद विधान ॥ जीवन०

दे तू सुरभि टूटने पर भी,
पैरों तले टूटने पर भी।
इस विधि से प्रभु की माला में,
पाले प्रिय स्थान ॥ जीवन बन०

[३१]

## पर्वों की सूची

आर्यों को वर्ष में जो पर्व मनाने चाहियें उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) नवसंवत्सरोत्सव।
(२) आर्य्यसमाज का स्थापन दिवस।
(३) रामनवमी।
(४) हरितृतीया।
(५) श्रावणी (उपाकर्म)
(६) कृष्ण-जन्माष्टमी।
(७) विजयादशमी।
(८) दयानन्दनिर्वाण (दीपावली)

(९) मकरसंक्रांति ।
(१०) वसंतपंचमी ।
(११) सीताष्टमी ।
(१२) दयानन्द बोध-रात्रि ।
(१३) लेखराम वीरतृतीया ।
(१४) वासन्ती नवसस्येष्टि ( होली )

इनको किस प्रकार मनाना चाहिये इसके लिये आगे लिखेंगे ।

[३२]

## पर्व-पद्धति

### नवसंवत्सरोत्सवः ( संवत्सरेष्टि )

गृहकृत्य—प्रातः सामान्य पर्वपद्धति में प्रदर्शित विधानानुसार गृह के परिमार्जन, शोधन, लेपनादि के पश्चात् नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र पहिनकर सपरिवार सामान्य होम करके संवत्सर वर्णनपरक मंत्रों से विशेष आहुतियां दी जायं ।

## आर्यसमाज का स्थापना दिवस

आर्यसमाज का स्थापना दिन और सरस्वती पूजा दोनों पर्व एक ही तिथि चैत्र सुदी ५ को पड़ते हैं इसलिये इन दोनों पर्वों की पद्धति एकत्र ही लिखी जाती है।

गृहकृत्य—प्रातः सामान्य पर्वपद्धति में पूर्व प्रदर्शित विधानानुसार गृह के परिमार्जन, शोधन, लेपनादि के बाद नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र परिधानपूर्वक सपरिवार सामान्य होम करके सरस्वती स्तुतिपरक मंत्रों से विशेष अधिक आहुतियां देवें।

## रामनवमी।

गृहकृत्य—प्रातः सामान्य पर्वपद्धति में प्रदर्शित विधानानुसार गृह के परिमार्जन, शोधन, लेपनादि के पश्चात् नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र परिधानपूर्वक सपरिवार सामान्य हवन होना चाहिये मध्याह्न में स्वसामर्थ्यानुसार सात्विक और रोचक पाक सम्पन्न कर के सपरिवार प्रीतिपूर्वक एकत्र मिल

कर भोजन करें तथा अपने आश्रित सेवकों आदि को भी उससे सत्कृत करें।

सामाजिक कृत्य—अपराह्न वा सायंकाल में सुभीते के अनुसार सब आर्यसामाजिक पुरुष समाज-मन्दिर आदि में एकत्र सभा करें। उसमें प्रथम वेदमंत्रों द्वारा परमेश्वर-प्रार्थना के पश्चात् श्री रामचन्द्र के इतिहास और गुणावली पर निबंध और कविता पाठ तथा भाषण होने चाहियें। तद-नन्तर उसी विषय पर मधुर गानवाद्य और वैदिक शान्तिपाठ के पश्चात् सभा विसर्जित की जाय।

## हरितृतीया

प्रातः सामान्य पर्वपद्धति में उल्लिखित विधाना-नुसार प्रत्येक परिवार में गृहमार्जन, लेपन आदि के पश्चात् सामान्य होम होना चाहिये। मध्याह्न में प्राचीन प्रथानुसार स्वादु पक्वान बना कर उनके वायनक (वायने) बड़ी बूढ़ियों को भेट किये जायं। सायं-काल को बना कर सब सखी सहेलियां मिल कर

संगीत और झूला झूलने का आनन्द उठावें किन्तु हरिगुण गायन वर्षा की प्राकृतिक शोभा वर्णन और पवित्र प्रेम के सुन्दर गीत ही इस आनन्दोत्सव पर गाने चाहियें।

## श्रावणी उपाकर्म

श्रावणी के साधारण सामान्य प्रकरण की क्रिया करके उपाकर्म नियमित विधि के अनुसार करना चाहिये। यज्ञ में चारों वेदों के प्रथम और अन्त के मन्त्रों से भी आहुति देनी चाहिये।

## श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के गुण तथा सामाजिक कृत्य भी श्रीराम-जयन्ती में लिखित विवरण के अनुसार ही है।

## विजयादशमी

स्वसुभीते के अनुसार विजयादशमी के प्रातः-काल शस्त्र और वाहनादि का संस्कार (स्वच्छता और सुधार) किया जाय। पूर्वाह्न में अन्य पर्वों के समान

गृह का परिमार्जन और लेपनादि करके सामान्य होम किया जाय। उसमें क्षात्रधर्म के द्योतक और यात्रा से लाभ के सूचक मंत्रों से विशेष आहुतियां दी जायं इस अवसर पर संस्कृत अस्त्र और परिष्कृत उपकरण भी यज्ञस्थल में स्थापित किये जायँ।

## श्री दयानन्द-निर्वाण ( दीपावली )

गृहकृत्य—यतः दीपावली का पर्व वर्ष भर में घरों की लिपाई, पुताई आदि संस्कार के लिये विशेषतः उद्दिष्ट है। इसलिये स्वसुभीते के अनुसार दिवाली के पूर्व दिन के सायंकाल प्रचलित प्रथानुसार यह सब कार्य समाप्त हो जाना चाहिये, कार्तिकी अमावास्या के दिन प्रातःकाल सामान्य पूर्व-पद्धति में प्रदर्शित प्रकारानुसार यज्ञशाला वा आवास गृह के तल का गोमय से पुनः लेपन करके स्वदेशीय नवीन शुद्ध वस्त्र परिधान पूर्वक सामान्य होम करके दयानन्द निर्वाण तथा नवसस्येष्टि के मंत्रों से स्थालीपाक से ३८ विशेष आहुतियां दी

जायं। स्थालीपाक नवागत श्रावणी शस्य के अन्न से बनाया गया पायस ( खीर ) हो। हवन के अन्य साकल्य में लाजा ( नवीन धानों की खील ) विशेषतः मिलाई जायँ।

## मकरसंक्रान्ति

गृहकृत्य—मकरसंक्रान्ति के दिन प्रातः सामान्य पर्वपद्धति में प्रदर्शित विधानानुसार गृह के परिमार्जन शोधन तथा लेपन आदि के पश्चात् नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र परिधान पूर्वक सपरिवार सामान्य हवन करें जिसके शाकल्य में तिल और शर्करा का परिमाण प्रचुर होना चाहिये और आहुतियों की मात्रा स्वसामर्थ्यानुसार बढ़ा देनी चाहिये।

## वसंतपञ्चमी

गृहकृत्य—प्रातः सामान्य पर्वपद्धति में प्रदर्शित प्रकारानुसार गृह के परिमार्जन ( शोधन लेपनादि ) के पश्चात् स्वदेशीय पीताम्बर ( पीतपट ) परिधान पूर्वक सपरिवार सामान्य होम करके वसंत-

वर्णनात्मक मंत्रों से केशर मिश्रित (वा उसके अभाव में हरिद्रामिश्रित) हलुवे के स्थालीपाक से पांच अधिक आहुतियां दी जायं।

## सीताष्टमी

श्री सीताष्टमी पर्व की पद्धति भी अन्य वीर पर्वों और जयन्तियों के गृह्य और सामाजिक कृत्यों के अनुसार है।

## श्री दयानन्द बोधरात्रि

श्रीदयानन्द जन्मदिवस पद्धति भी अन्य वीर पर्वों और जयन्तियों के गृह्य सामाजिक कृत्यों के अनुसार है।

## श्री लेखराम वीरतृतीया

वीरतृतीया पर्व की पद्धति भी अन्य वीर पर्वों के गृह्य और सामाजिक कृत्यों के अनुसार ही है।

## वासन्ती नवसस्येष्टि (होली)

फाल्गुन पूर्णिमा के प्रातः सामान्यपद्धति में प्रदर्शित प्रकारानुसार नवपीताम्बर वा श्वेताम्बर परि-

धानपूर्वक सामान्य होम करके नवसस्येष्टि के मंत्रों से स्थालीपाक की ३१ विशेप आहुतियां दी जायं। स्थालीपाक नवागत आपाढ़ी सस्य के गोधूम व यव चूर्ण से बनाया गया मोहनभोग हलुआ हो। हवन के अन्य साकल्य में नवागत यव ( जौ ) विशेपतः मिलाये जायं।

टि०—आहुति के मंत्रों तथा विस्तृत व्याख्या के लिये "आर्य्यपर्वपद्धति" देखिये जो सार्वदेशिक पुस्तकालय देहली से मिलती है।

[ ३२ ]

# आर्यसमाज के नियम और उन पर एक दृष्टि

( १ ) सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

( २ ) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्व-शक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त,

निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

( ३ ) वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म्म है।

( ४ ) सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

( ५ ) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

( ६ ) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

( ७ ) सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

( ८ ) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

( ९ ) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

( १० ) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

## नियमों पर एक दृष्टि

इन नियमों का वास्तविकरूप सर्वसाधारण की दृष्टि में आ जाय इसलिये इनके सम्बन्ध में कुछ एक बातों का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। इसलिये उन सब को यहां लिख देते हैं।

पहिला नियम—आदि मूल (first cause) निमित्त या चैतन्य कारण को कहते हैं। कुम्हार निमित्त ( आदि ) कारण और मिट्टी उपादान कारण (Materaial Cause) है। इस विषय में

दो वस्तुएं हैं जिनका निमित्त कारण परमेश्वर को कहा गया है। (१) सब सत्य विद्या, (२) जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं। सत्य विद्या तीनों काल में एक जैसा रहने वाले ज्ञान को कहते हैं वह कौनसा ज्ञान है जो तीनों काल में एक जैसा रहता है? वह है ईश्वर, जीव और (कारण रूप) प्रकृति का ज्ञान। परमेश्वर को जो इस नियम में आदि (मूल) कारण कहा गया है। इसका भाव यह है कि वह उसी (ईश्वर+जीव+प्रकृति के) ज्ञान का आदि कारण है, क्योंकि ये सब तो नित्य (अनादि) हैं। इसी सत्य विद्या का नाम वेद है जैसा कि तीसरे नियम में कहा गया है। इसलिये पहिली बात जो यह नियम बतलाता है यह है कि परमेश्वर सत्य विद्या अर्थात् वेद का आदि मूल है और इसीलिये परमेश्वर को आदि गुरु भी कहा जाता है। (२) विद्या परिवर्तनीय ज्ञान को कहते हैं। ब्रह्माण्ड में परिवर्तनीय वस्तु

क्या है ? कार्यरूप प्रकृति । कार्यरूप प्रकृति ही का नाम सृष्टि है परिवर्तनीय ( वस्तुओं ) का ज्ञान भी परिवर्तनीय होता है । इसलिये परिवर्तनीय ज्ञान ( विद्या ) सृष्टि विद्या या जगत् के ज्ञान को कहते हैं । इसी ज्ञान ( विद्या ) से सम्पूर्ण जगत् का ज्ञान मनुष्य को हुआ करता है । परिणाम यह है कि परमेश्वर जगत् का निमित्त कारण है । जगत् का उपादान कारण प्रकृति है । संक्षेप के साथ पहिले नियम को इस प्रकार कहते हैं कि परमेश्वर वेद और जगत् का निमित्त ( आदि ) कारण है ।

दूसरा नियम—इस नियम में दो बातें वर्णित हैं । पहिली बात यह है कि परमेश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु आदि सत्तात्मक गुणों की वजह से "सगुण" और निराकार, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि आदि अभावात्मक गुणों के कारण "निर्गुण" भी है । दूसरी बात नियम में यह बतलाई गई है कि इस

प्रकार का "सगुण+निर्गुण" ब्रह्म ही एकमात्र उपास्य देव है। उससे भिन्न किसी की भी उपासना नहीं करनी चाहिये। इस नियम में आये "सर्वशक्तिमान्" शब्द का भाव यह है कि ईश्वर अपने (सृष्टि) नियमों के अन्तर्गत रहता हुआ अपनी असीम शक्तियों को प्रयोग में लाया करता है। अपने नियमों का स्वयं भी कभी उल्लंघन नहीं करता। अर्थात् ईश्वर यह नहीं करता अथवा नहीं कर सकता है कि अन्याय करे या अपने जैसा दूसरा परमेश्वर उत्पन्न कर लेवे, अथवा अपने को मार लेवे, इत्यादि।

तीसरा नियम—"सत्य विद्या का आदि मूल परमेश्वर है। यह बात पहिले नियम में वर्णित है। तीसरे नियम में कहा गया है कि वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। जिसका तात्पर्य यह हुआ जैसा कि पहिले नियम की व्याख्या में कहा जा चुका है कि वेद का आदि मूल (प्रकाशकर्त्ता) परमेश्वर है इसी-

लिये वेद का श्रवण और अध्ययन करना आर्यों का केवल धर्म ही नहीं, अपितु परम धर्म बतलाया गया है।

चौथा नियम—आर्यसमाज की शोभा है और समाज को उन सब ग्रन्थों से सर्वथा पृथक् करता है जो अपनी साधारण और किन्हीं २ सूरतों में सर्वथा निरर्थक बात के लिये भी मरने मारने को तैयार रहते हैं, क्योंकि आर्यसमाज को सत्य इतनी खरी वस्तु मालूम हुई इसलिये कि वेद और उपनिषदों में ईश्वर को "सत्य" कहा गया है। क्योंकि ईश्वर सत्य है इसका उत्तर बृहदारण्य-कोपनिषद् ने दिया "सत्यम्" शब्द तीन शब्दों का योग है (स+ति+यम्) "स" जीव को कहते हैं "ति" ब्रह्माण्ड को "यम्" शासक का नाम है। इस प्रकार "सत्यम्" परमेश्वर का नाम इसलिये है कि वह जीव और जगत् दोनों को (शासन) नियम में रखता है। (देखो बृह० अ० ५। ब्रा० ५। कं० १) फिर प्रश्न है कि ऐसे (सत्यम्) ब्रह्म को किस

प्रकार प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषद् का उत्तर यह है "तत् सत्ये प्रतिष्ठितम्" वह ब्रह्म सत्य में प्रतिष्ठित है इसलिये सत्य को प्राप्त करने और सत्याचरण करने ही से ब्रह्म को प्राप्त कर सकते हैं। (बृहदारण्यकोपनिषद्) इसका परिणाम यह हुआ कि सत्य से विमुख होना ईश्वर से विमुख होना है। इसलिये सत्य की इतनी महिमा वैदिकसाहित्य में गान की गई है।

पांचवां नियम—शिक्षा देता है कि कर्त्ता को प्रत्येक कार्य स्वयमेव विचार कर करना चाहिये। उसे करने से पहिले उस कार्य के सम्बन्ध में यह निश्चय कर लेना चाहिये कि वह धर्म-कार्य है, उसमें असत्य का कोई भी अंश नहीं है। वैदिकसाहित्य में "सत्य" और "धर्म" पर्यायवाचक शब्द समझे जाते हैं। इसीलिये उपनिषद् में कहा गया है।

यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्
सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति ॥

अर्थात् निश्चय जो वह धर्म है वह सत्य है। इसलिये सत्य कहने वाले को कहते हैं कि यह धर्म का उपदेश कर रहा है। इसी प्रकार धर्म उपदेश करते हुए पुरुष को कहते हैं कि यह सत्य कह रहा है। (बृहदारण्यकोपनिषद् अ० १। ब्रा० ४। कं० १४) इस प्रकार यह नियम चाहता है कि अन्ध-विश्वास अथवा आंख बन्द करके किसी के पीछे चलने की प्रथा दुनियां से उठ जाय। इसी प्रथा ने सत्य का ह्रास किया है और अनृत की वृद्धि।

छठा नियम—यह नियम दो बातें प्रकट करता है। एक यह कि आर्यसमाज जिस (वैदिक) धर्म का प्रचार करता है वह किसी देश या जाति विशेष के लिये नहीं, किन्तु संसार भर के लिये है। जैसा कि ऋग्वेद की इस प्रसिद्ध ऋचा में कहा है।

इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तोऽराव्णः ॥ ऋ० ९। ६३। ५॥

अर्थात् दुर्गुणों का नाश और ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए समस्त जगत् को आर्य बनाना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि मनुष्य को व्यक्ति समाज का सुधार तीनों प्रकार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिकोन्नति करते हुए करना चाहिये।

सातवां नियम—सामाजिक व्यवहार की मर्यादा नियत करता है। जो पुरुष जिस योग्य हो उसके साथ उसी के योग्य व्यवहार करना चाहिये परन्तु प्रत्येक व्यवहार प्रीति और प्रेम से होना चाहिये।

आठवां नियम—अविद्या ( अज्ञान ) रूप निर्बलता को दूर करके विद्या ( ज्ञान ) रूप बल से संसार के प्राणियों को बलवान् बनाने की दीक्षा देता है।

नवां नियम—संसार से सम्पूर्ण झगड़ों की जड़ स्वार्थ ( खुदगर्ज़ी ) को उखाड़ कर फेंक देने की

शिक्षा देता है। प्रत्येक मनुष्य यदि अन्यों की उन्नति की चिन्ता के साथ अपनी उन्नति में संलग्न हुआ करे तो संसार शान्ति धाम बन सकता है।

दशवां नियम—व्यक्ति और समाज दोनों के बीच में रेखा खींच कर दोनों के साथ मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है उसका विधान करता है। प्रत्येक व्यक्ति उन सम्पूर्ण कार्यों के करने में पूर्ण २ स्वतन्त्रता रखता है जिनका सम्बन्ध व्यक्तिगत हित से हो। परन्तु जो कार्य सर्व हितकारी या समाज के हित से सम्बन्धित है इनमें प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको समाज के नियमों का पाबन्द समझे। यही विधान है जिससे व्यक्ति और समाज दोनों की उन्नति हुआ करती है।

## समष्टिरूप से आर्यसमाज के नियमों पर दृष्टि

मनुष्य इस संसार में तीन कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिये आया करता है—(१) अपने साथ क्या करना चाहिये। (२) अन्यों के साथ क्या करना

चाहिये। ( ३ ) परमेश्वर के साथ क्या करना चाहिये। आर्यसमाज के दस नियम भी इन्हीं तीनों कर्त्तव्यों का विधान करते हैं। पहिले और दूसरे नियम में मनुष्य के उस कर्त्तव्य का विधान है जो उसे ईश्वर के सम्बन्ध में पूरा करना चाहिये। अर्थात् मनुष्य को यह विश्वास रखते हुए कि परमेश्वर जगत् का रचयिता और वेद का प्रकाशक है उसकी और एकमात्र उसी ईश्वर की उपासना करनी चाहिये।

( २ ) आर्यसमाज के ३, ४, ५ वें नियम उन कर्त्तव्यों को प्रकट करते हैं जो मनुष्य को अपने सम्बन्ध में पूरे करने चाहियें वे कर्त्तव्य ये हैं:—

( १ ) वेद पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना चाहिये।

( २ ) असत्य का त्याग करके, सत्य का ग्रहण करना चाहिये।

( ३ ) प्रत्येक कार्य सत्यासत्य का विवेक करके करना चाहिये।

(४) अन्त में पांच नियम उन कर्त्तव्यों का विधान करते हैं जो मनुष्य को अन्यों के सम्बन्ध में पूरे करने चाहियें और वे ये हैं:—

(१) उसे मनुष्यमात्र की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के लिये प्रयत्नवान् होना चाहिये।

(२) विद्या का विस्तार करना चाहिये।

(३) अपनी उन्नति के साथ ही अन्यों की उन्नति का भी विचार रखना चाहिये।

(४) समाज के नियमों का पाबन्द रहना चाहिये। हमने देख लिया है कि आर्यसमाज के नियम यद्यपि गणना में केवल दस हैं परन्तु उनके भीतर इतनी सामग्री मौजूद है जो व्यक्ति और समाज को अधिक से अधिक उन्नत बनाने के लिये पर्याप्त है।

[३४]

# आर्यसमाज के उपनियम

## नाम

१—इस समाज का नाम आर्यसमाज होगा।

## उद्देश्य

२—इस समाज के उद्देश्य वही हैं जो इसके नियमों में वर्णन किये गये हैं।

## आर्य

३—जो लोग आर्यसमाज में नाम लिखाना चाहें और समाज के उद्देश्य के अनुकूल आचरण स्वीकार करें वे आर्यसमाज में प्रविष्ट हो सकते हैं, परन्तु अठारह वर्ष से न्यून आयु न हो।

जो लोग आर्यसमाज में प्रविष्ट हों वे आर्य कहलावेंगे।

## आर्यसभासद्

४—( क ) जिनका नाम आर्यसमाज में सदाचार से एक वर्ष रहा हो और वे अपने आय का

शतांश वा अधिक, मासिक वा वार्षिक आर्य-
समाज को दें आर्यसभासद् हो सकते हैं ।

( ख ) सम्मति देने का अधिकार केवल आर्य-
सभासदों को होगा ।

५—जो आर्यसमाज के उद्देश्य के विरुद्ध काम करेगा
वह न तो आर्य और न आर्यसभासद् गिना
जावेगा ।

६—आर्यसभासद् दो प्रकार के होंगे । एक साधारण
आर्यसभासद् और दूसरे माननीय आर्य-
सभासद् ।

माननीय आर्यसभासद् वे होंगे जो शतांश दश
रुपये मासिक वा उससे अधिक दें वा एक बेर २५०)
रुपये दें वा जिसको अन्तरङ्गसभा विद्यादि श्रेष्ठ गुणों
से माननीय समझे ।

## साधारण सभा

७—साधारण सभा तीन प्रकार की होगी:—

(१) साप्ताहिक ।(२) वार्षिक ।(३) नैमित्तिक ।

## साप्ताहिक साधारण सभा

८—(क) यह सभा प्रत्येक सप्ताह में एक बेर हुआ करेगी।

(ख) इसमें वेदमन्त्रों का पाठ, उपासना, भजन, कीर्तन और व्याख्यान हुआ करेंगे।

(ग) जो कोई समाज-सम्बन्धी मुख्य बात सभा के जानने योग्य हो वह भी इस सभा में कही जायगी।

## वार्षिक साधारण सभा

९—(क) यह सभा प्रतिवर्ष एक बेर नीचे लिखे प्रयोजनों के लिये हुआ करेगी:—

(१) समाज के वार्षिक उत्सव करने के लिये।

(२) अन्तरङ्ग सभा के प्रतिष्ठित सभासद् और अधिकारियों के नियुक्त करने के लिये।

( २ ) समाज के पिछले वर्ष का वृत्तान्त सुनाने के लिये।

(ख) इस सभा के होने के समय आदि का विज्ञापन एक महीना पहिले दिया जावेगा।

## नैमित्तिक साधारण सभा

१०—(क) यह सभा जब कभी आवश्यकता हो किसी विशेष काम के लिये नीचे लिखी हुई दशाओं में की जायगी—

( १ ) जब प्रधान और मन्त्री चाहें।

( २ ) जब अन्तरङ्गसभा चाहे।

( ३ ) जब आर्यसभासदों का बीसवां अंश इस निमित्त मन्त्री के पास लिखकर पत्र भेजे।

(ख) इस सभा के होने के समय आदि का विज्ञापन समयानुकूल पहिले दिया जावेगा।

## अन्तरङ्ग सभा

११—समाज के सब कार्य्यों के प्रबन्ध के लिये एक

अन्तरङ्गसभा नियुक्त की जावेगी और इसमें तीन प्रकार के सभासद् होंगे, अर्थात्—(१) प्रतिनिधि, (२) प्रतिष्ठित और (३) अधिकारी।

१२–प्रतिनिधि सभासद् अपने अपने समुदायों के प्रतिनिधि होंगे और उन्हें उनके समुदाय नियत करेंगे। कोई समुदाय जब चाहे अपने प्रतिनिधि को बदल सकता है।

१३–सभासदों के विशेष काम ये होंगे:—

(क) अपने अपने समुदायों की सम्मति से अपने को विज्ञ रखना।

(ख) अपने अपने समुदायों का अन्तरङ्गसभा के काम, जो कि प्रकट करने योग्य हों, बतलाना।

(ग) अपने अपने समुदायों से चन्दा इकट्ठा करके कोषाध्यक्ष को देना।

१४–प्रतिष्ठित सभासद् विशेष गुणों के कारण प्रायः वार्षिक वा नैमित्तिक साधारण सभा में नियत

किये जावेंगे प्रतिष्ठित सभासद् अन्तरङ्गसभा में एक तिहाई से अधिक न होंगे।

१५—वर्ष वर्ष के पीछे अन्तरंगसभा के प्रतिष्ठित सभासद् और अधिकारी वार्षिक साधारण सभा में फिर से नियत किये जावेंगे। और कोई पुराना प्रतिष्ठित सभासद् और अधिकारी पुनर्वार नियत हो सकेगा।

१६—जब वर्ष के पहिले किसी प्रतिष्ठित सभासद् वा अधिकारी का स्थान रिक्त ( खाली ) हो तो अन्तरंगसभा आप ही उसके स्थान पर किसी और योग्य पुरुष को नियत कर सकेगी।

१७—अन्तरंगसभा कार्य के प्रबन्ध के निमित्त उचित व्यवस्था बना सकती है परन्तु वे आर्यसमाज के नियमों और उपनियमों से विरुद्ध न हों।

१८—अन्तरंगसभा किसी विशेष काम के करने और सोचने के लिये अपने में से सभासदों और

विशेष गुण रखनेवाले और सभासदों को मिलाकर उपसभा नियत कर सकती है।

१९–अन्तरंगसभा का कोई सभासद् मंत्री को एक सप्ताह पहिले विज्ञापन दे सकता है कि कोई विषय सभा में निवेदन किया जावे और वह (विषय) प्रधान की आज्ञानुसार निवेदन किया जायगा। परन्तु जिस विषय के निवेदन करने में अन्तरंगसभा के पांच सभासद् सम्मति दें वह अवश्य निवेदन करना ही पड़ेगा।

२०–दो सप्ताह के पीछे अन्तरंगसभा एक बेर अवश्य हुआ करेगी और मंत्री और प्रधान की आज्ञा से वा जब अन्तरंगसभा के पांच सभासद् मंत्री को पत्र लिखें तो भी हो सकती है।

## अधिकारी

२१–अधिकारी पांच प्रकार के होंगेः—

(१) प्रधान, (२) उपप्रधान, (३) मंत्री, (४) कोषाध्यक्ष, (५) पुस्तकाध्यक्ष।

२२-मंत्री, कोषाध्यक्ष और पुस्तकाध्यक्ष इनके अधिकारों पर आवश्यकता होने से एक से अधिक पुरुष भी नियत हो सकते हैं और जब किसी अधिकार पर एक से अधिक पुरुष नियत हों तो अन्तरंगसभा उन्हें काम बांट देगी।

## मिश्रित

२८-जब आर्यसभासदों की सम्मति पत्र द्वारा निम्नलिखित दशाओं में ली जायगीः—

(१) जब अंतरंगसभा का यह निश्चय हो कि समाज की भलाई के लिये किसी साधारण सभा के सिद्धान्त पर निर्भर न करना चाहिये, वरन् सब आर्य्यसभासदों की सम्मति जाननी चाहिये।

(२) जब सब आर्य्यसभासदों का बीसवां वा अधिक अंश इस निमित्त मंत्री के पास पत्र लिखकर भेजे।

( ३ ) जब बहुतसे व्ययसम्बन्धी वा प्रबन्ध-संबन्धी वा नियम वा व्यवस्थासंबन्धी कोई मुख्य प्रस्ताव करना हो, अथवा जब अन्तरंगसभा सब आर्य्यसभासदों की सम्मति जानना चाहे ।

२९—जब किसी सभा में थोड़े से समय के लिये कोई अधिकारी उपस्थित न हो तो उसके स्थान में उस समय के लिये किसी योग्य पुरुष को अन्तरंगसभा नियत कर सकती है ।

३०—किसी अधिकारी के स्थान पर वार्षिक साधारण सभा में कोई पुरुष नियत न किया जावे तो तब तक उसके स्थान पर कोई और नियत न किया जाय वही अधिकारी अपना काम करता रहेगा ।

३१—सब सभा और उपसभाओं का वृत्तान्त लिखा जाया करेगा और उसको सब आर्यसभासद् देख सकेंगे ।

३२-सब सभाओं का काम तब आरम्भ होगा जब एक तिहाई सभासद् उपस्थित हों ।

३३-सब सभाओं और उपसभाओं के सारे काम बहुपक्षानुसार निश्चित होंगे ।

३४-आय का दशांश समुदाय धन में रक्खा जावेगा।

३५-सब आर्य और आर्यसभासदों को संस्कृत वा आर्यभाषा ( हिन्दी ) जाननी चाहिये ।

३६-सब आर्य और आर्यसभासदों को उचित है कि लाभ और आनन्द-समय समाज पर भी दृष्टि रक्खें ।

३७-सब आर्य और आर्यसभासदों को उचित है कि शोक और दुःख के समय में परस्पर सहायता करें और आनन्द उत्सव में निमंत्रण पर सहायक हों और छोटाई बड़ाई न गिनें ।

३८-कोई आर्य भाई किसी हेतु से अनाथ हो जावे वा किसी की स्त्री विधवा वा सन्तान अनाथ हो जावे अर्थात् उसका किसी प्रकार जीवन

न हो सकता हो और यदि आर्यसमाज इसको निश्चित जान ले तो आर्यसमाज उसकी रक्षा में यथाशक्ति यथोचित प्रबन्ध करे।

३९–यदि आर्यसमाज में किसी का आपस में झगड़ा हो तो उनको योग्य होगा कि वे उसको आपस में समझ लें वा आर्यसमाज की न्याय उपसभा द्वारा उसका न्याय करालें।

४०–यह उपनियम वर्ष वर्ष पीछे यथोचित विज्ञापन देने पर शोधे वा बढ़ाये घटाये जा सकते हैं।

[ ३५ ]

## आर्यसमाज के मन्तव्य

पहिला मन्तव्य—आर्यसमाज का त्रित्ववाद है। ईश्वर, जीव और प्रकृति अर्थात् जगत् का उपादान कारण, इन तीनों को आर्यसमाज नित्य मानता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में इन तीनों पदार्थों का विभाग इस प्रकार किया गया है कि वृक्षरूप प्रकृति भोग्य

और जीव भोक्ता और परमेश्वर साक्षी ( और फल-दाता ) है[1] ।

दूसरा मन्तव्य—चारों वेद ऋक्, यजु, साम और अथर्व को आर्यसमाज अपौरुषेय अर्थात् वे मनुष्यकृत नहीं हैं ऐसा मानता है। ये वेद विद्या धर्म और ईश्वरप्रणीत होने से निर्भ्रान्त और स्वतःप्रमाण हैं। वेद से भिन्न उपवेद, वेदाङ्ग, उपांग, ब्राह्मण ग्रन्थ, प्रातिशाख्य, आरण्यक और उपनिषदादि सभी ग्रन्थ ऋषिप्रणीत होने से परतः प्रमाण हैं। अर्थात् ये ग्रन्थ वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं वे अप्रमाण हैं। वेदों की दो शिक्षायें यहां लिखी जाती हैं:—

पहिली शिक्षा—जिसे स्वच्छ वैदिकधर्म कहा जा सकता है यह है कि "मनुष्य ज्ञान उप-

१ देखो ऋग्वेद १ । १६४ । २० ॥

लब्ध करे और उसको अमल में ले आवे, परन्तु ये ज्ञान और कर्म मौत के बन्धन को ढीला करने वाले हों"[१]।

आत्मा के स्वाभाविक गुण, ज्ञान और प्रयत्न (कर्म) हैं। इन्हीं को सार्थक करने के लिये मनुष्य-शरीर में ज्ञान और कर्मेन्द्रिय रक्खे गये हैं। दोनों प्रकार के इन्द्रिय इस प्रकार उन्नत हों कि वे आत्मा को लोक और परलोक दोनों में स्वतन्त्र करें और मनुष्य की बन्धन से मुक्ति हो जावे। इन्हीं के उन्नत करने के विधान का नाम वैदिकधर्म है और वह विधान ज्ञान और कर्म दोनों को उन्नत करता है। यही वेद की पहली शिक्षा है और इसी का नाम वैदिकधर्म है।

दूसरी शिक्षा—वेद की जिस दूसरी शिक्षा का, हम यहां उल्लेख करना चाहते हैं यह है कि वेद चाहते हैं जगत् में अधिक से अधिक प्रेम का

१ यजु० अध्याय ४०। मन्त्र ६—११।

व्यवहार हो और कोई प्राणी किसी दूसरे को कष्ट न पहुंचावे। प्रत्येक मनुष्य सब की उन्नति में अपनी भी उन्नति समझे। इस शिक्षा का प्रचार हो इसलिये कुछेक वेदोपदेश, जो मनुष्य को कर्त्तव्य के रूप में दिये गए हैं, यहां लिखे जाते हैं:—

(१) तुम साथ २ मिलकर चलो (अर्थात् तुम्हारा मार्ग एक हो) तुम्हारी भाषा एक हो, तुम्हारा मानसिक ज्ञान समान हो। जैसा कि पहिले विद्वानों ने एकमत होकर धर्म और ऐश्वर्य का सेवन किया है (वैसा ही तुम भी करो[१])

(२) तुम्हारा मन्त्र (विचार) समान हो, सभा समान हो, तुम्हारा मन (प्रेम का केन्द्र) एक हो और चित्त (मस्तिष्क) एक हो, एक ही मन्त्र (शिक्षा) तुम्हारे लिये उपदेश करता हूं, एक ही यज्ञ (कर्तव्य कर्म) तुम्हारे लिये नियत करता हूं[२]।

---

१ ऋग्वेद १० । १९१ । २ ॥
२ ऋ० १० । १९१ । ३ ॥

( ३ ) तुम्हारा इरादा एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों, तुम्हारा मन एक हो, जिससे तुम्हारा शुभ मेल परस्पर बना रहे[1]।

( ४ ) तुम्हारा कर्त्तव्य पारस्परिक द्वेष से रहित और समान विचारों से युक्त नियत करता हूं। तुम एक दूसरे को इस प्रकार प्रेम करो जैसे गाय नव-जात बछड़े को प्यार करती है[2]।

( ५ ) पुत्र पिता के अनुकूल कर्मों वाला हो और माता के साथ भी मेल रक्खे, पत्नि पति के लिये ऐसी वाणी बोले जो मिठास-युक्त और शान्ति पूर्ण हो[3]।

( ६ ) भाई भाई से द्वेष न करे, बहिन से बहिन झगड़ा न रक्खे, एक दूसरे के साथ मिलकर

---

१ ऋ० १० । १९१ । ४ ॥

२ अथर्ववेद ३ । ३० । १ ॥

३ अथर्व० ३ । ३० । २ ॥

एक दूसरे के अनुकूल कर्मों वाले होकर कल्याण लाने वाली वाणी के साथ बात चीत करो[1]।

( ७ ) तुम्हारा जलाशय ( कुआं आदि ) एक हो और अन्न का भाग साथ साथ हो ( अर्थात् मिल कर खाओ पियो ), एक ही जुए ( नियम ) में तुमको साथ साथ जोड़ा जाता है। तुम सब मिलकर अग्नि का सेवन करो[2]। जैसे अरे रथनाभि के चारों ओर हुआ करते हैं।[3]

( ८ ) एक दूसरे को वश में करने वाला, प्रेम के साथ २ चलने वाला समान विचार और एक नेता वाला बनाता हूं। देवों ( विद्वानों ) की तरह अमृत की रक्षा करते हुए तुम ( संसार में ) रहो।

---

१ अथर्व० ३ । ३० । ३ ॥

२ अग्नि को कलाकौशल के काम में लाओ या अग्निहोत्र करो।

३ अथर्व० ३ । ३० । ६ ॥

सायं प्रातः ( अर्थात् सदैव ) तुम्हारे भाव एक दूसरे के अनुकूल हों[१]।

( ६ ) मुझे ब्राह्मणों में, क्षत्रियों में, वैश्य और शूद्र सभी देखने वाले ( प्राणी ) का प्रिय कर[२]।

**तीसरा मन्तव्य**—बन्ध और मोक्ष के संबन्ध में है "बन्धन" दुःखों से ग्रस्त होने रूप परतन्त्रता का नाम है इसके विपरीत "मोक्ष" तीनों प्रकार के दुःखों से छूट कर बन्धन रहित होने को कहते हैं। मुक्ति के साधन ईश्वरोपासना द्वारा गुण वृद्धि, योगाभ्यास द्वारा आत्मा और अन्तःकरण को शुद्ध बनाना, धर्मानुष्ठान, विद्या प्राप्ति, ब्रह्मचर्य का सेवन और सत्संग आदि है।

**चौथा मन्तव्य**—आवागमन है। कर्म फलानुसार जीव के एक शरीर छोड़कर दूसरे में जन्म

१—३। ३०७॥

२—१६। ६२। १॥

देने का नाम आवागमन है। कोई दुखी, कोई सुखी, कोई अन्धा, कोई लंगड़ा आदि जो भिन्न स्थिति के नर नारी संसार में दिखाई देते हैं न यह अकारण है और न इन्हें ईश्वर ने अपनी ओर से ऐसा बना दिया है किन्तु इन सब स्थितियों के कारण मनुष्य के अपने कर्म ही हुआ करते हैं और इसी आवागमन के द्वारा मनुष्य अपने पहले का फल प्रचलित स्थिति के रूप में पाया करते हैं।

पांचवां मन्तव्य—वर्ण और आश्रम से सम्बन्धित है अर्थात् वर्ण और आश्रम गुण और कर्म की योग्यता से माने जाते हैं।

[ २६ ]

# चार आश्रम और चार वर्ण और दोनों की विशेषतायें।

आश्रम-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था का प्रचलित निकृष्ट रूप देखकर कुछेक अदूरदर्शी पुरुष उन

से घृणा करने लगे हैं इसलिये आवश्यक है कि उनका शुद्ध वैदिक और वैज्ञानिक रूप अत्यन्त संक्षिप्त रीति से प्रकट कर दिया जावे।

## आश्रम चार हैं

मनुष्य-जीवन अधिक से अधिक उपयोगी और शुद्ध बन सके इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसको चार विभागों में विभक्त किया गया है।

१ ब्रह्मचर्याश्रम—आत्मिक और शारीरिक उन्नति मनुष्य को अपने जीवन के पहले भाग में, जिसकी कम से कम अवधि २५ वर्ष है, करनी चाहिये। यही आश्रम है जिसमें विद्याऽध्ययन करके ब्रह्मचर्य के नियमों का पूर्ण रीति से पालन करते हुए समस्त अन्तः और बाह्य करणों को पुष्ट बनाया जाता और आत्मबल संचय किया जाता है।

( २ ) गृहस्थाश्रम—जीवन के दूसरे भाग का नाम है। इसमें मनुष्य को मर्य्यादा के साथ विवाह करके सन्तान पैदा करनी चाहिये और उप-

योगी उद्यम करके धन पैदा करना चाहिये । यह आश्रम ४ विभागों में विभक्त है और इन्हीं विभागों का नाम वर्ण है ।

[ ३७ ]

## गृहस्थाश्रम के ४ विभाग, ४ वर्ण

ये भेद गृहस्थाश्रम के केवल वृत्ति ( जीविका ) उपलब्धि के उद्देश्य से किये गये हैं जिनका विवरण इस प्रकार है:—जो मनुष्य वेदादि सत्-शास्त्रों के पढ़ाने और यज्ञादि समस्त शुभ कर्म कराने के द्वारा धन पैदा करते हैं उन्हें ब्राह्मण कहना चाहिये और जो राज्यसम्बन्धी ( प्रजा का रक्षणादि ) सेवा कर के धन पैदा करें उन्हें क्षत्रिय कहा जाता है । और कृषि व्यापार, पशुपालन आदि उद्यमों के करनेवाले का नाम वैश्य होता है, शारीरिक परिश्रम करके धन पैदा करने वालों को शूद्र कहते हैं ।

## वर्णव्यवस्था की दो विशेषतायें

वर्णव्यवस्था की दो विशेषतायें इस प्रकार हैं (१) इनमें एक तो समता का भाव निहित है, असल में वैदिक साम्यवाद यही वर्णव्यवस्था है। वेदों में जगह २ मनुष्य को अज्येष्ठ और अकनिष्ठ कहा गया है। मतलब यह है कि इन वर्णों में किसी प्रकार की छुटाई बड़ाई नहीं है। अर्थात् यह नहीं कह सकते कि ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य वर्ण बड़ा है और शूद्र वर्ण छोटा है। इसका कारण है और महत्त्व-पूर्ण कारण है और वह यह है कि दरजों (Degrees) का भेद एक प्रकार (Kind) की वस्तुओं या व्यक्तियों के भीतर हुआ करता है परन्तु जिनमें (Kind) प्रकार भेद है उनमें दरजों का भेद नहीं हुआ करता है। यदि १०० आदमी बढ़ई का काम करनेवाले हैं तो चूंकि ये सब के सब एक श्रेणी के पेशेवर हैं इसलिये इनमें कह सकते हैं कि अमुक बढ़ई अव्वल दरजे का है और अमुक

दूसरे दरजे का इत्यादि । इनमें से इस प्रकार दरजों का भेद श्रेणी के अभेद होने के कारण ही कहा जा सकता है, परन्तु यदि श्रेणी का भेद होता अर्थात् यदि एक बढ़ई, दूसरा लुहार, तीसरा कृषक और चौथा सिपाही और पांचवां अध्यापक तो इनमें दरजों का भेद नहीं किया जा सकता । इसी नियम के अनुसार ब्राह्मण आदि वर्णों में चूंकि श्रेणी का भेद है इसलिये इनमें दरजों का भेद नहीं ढूंढा जा सकता । वेद ने इसीलिये मनुष्यमात्र को अमृत-पुत्र कहा है । प्रचलित छुटाई बड़ाई किन्हीं जातियों के पुरुषों को ऊंचा और किसी को नीचा समझना यह सर्वथा वेदविरुद्ध और आर्यसमाज की शिक्षा के विरुद्ध है । इसीलिये लाखों अछूतों से अछूतपन दूर करके उन्हें अपने खान पान आदि सभी व्यवहारों में शामिल कर लिया है । ( २ ) दूसरी विशेषता यह है कि ये वर्ण गुण और कर्म पर निर्भर हैं । इनको जन्ममूलक समझना वेदविरुद्ध

और प्राचीन आर्यसभ्यता और शिक्षा के सर्वथा विपरीत है। ये गुण कर्म और केवल गुण कर्म पर निर्भर है। इसीलिये वैदिक साम्यवाद की बुनियाद कर्म पर निर्भर है। इस समय पश्चिमी देशों में जितना झगड़ा पूंजी और श्रम विभाग में है इसका कारण यही है कि वहां कर्म विज्ञान की अवहेलना करके विना किसी कार्मिक मर्यादा के लाठी और केवल लाठी के बल से सबको बराबर करने की चेष्टा की जाती है। परन्तु यह समता न कभी हुई और न आगे इसके कभी होने की सम्भावना है। जो पुरुष इस प्रकार बल का प्रयोग करके सबको बराबर करना चाहते हैं वे बेवकूफों के स्वर्ग का स्वप्न देख रहे हैं। यदि वैदिक-मर्यादा के अनुसार साम्यवाद कर्म पर निर्भर रहे तो हरएक को संतोष रह सकता है और प्रत्येक समझने लगेगा कि उसने जितना पुरुषार्थ किया है उसका फल भोग रहा है इसमें किसी से न लड़ने की बात है न झगड़ने की।

## तीसरे और चौथे आश्रम

तीसरा वानप्रस्थ और चौथा संन्यास आश्रम है मनुष्य को २५ वर्ष गृहस्थ-जीवन व्यतीत करके समस्त गृह और गृह की सम्पत्ति को अपने ज्येष्ठ पुत्र के हवाले करके गृहस्थाश्रम से मुक्त होकर ५१ वें वर्ष में वानप्रस्थाश्रम में चला जाना चाहिये, इस आश्रम में आकर उसे तपस्वी-जीवन व्यतीत करते हुए अपनी आवश्यकताओं को न्यून से न्यून करके जनता की सेवा करना चाहिये। इस आश्रम के लोग बिना लम्बी चौड़ी तनख़्वाह लिये मुफ़्त के प्रोफेसर अध्यापकादि सभी पेशों की शिक्षा देनेवाले बना करते थे और अब भी बन सकते हैं। इसके बाद चौथे आश्रम में प्रवेश करके जीवन के अन्तिम भाग को अभ्यास, स्वाध्याय और जनता को उपदेश देने आदि श्रेष्ठ कार्यों में व्यतीत करना चाहिये।

## आश्रम-व्यवस्था की एक बड़ी विशेषता

इस आश्रम-व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता

यह है कि इसमें किसी व्यक्ति को एक खास अवधि के बाद धन रखने का अधिकार नहीं दिया गया है और इसीलिये धन के प्रलोभन में पड़कर पश्चिमी देशों के सदृश, कोई भी व्यक्ति आजन्म पूंजीपति बन ही नहीं सकता। वानप्रस्थ में आते समय यदि थोड़ा धन है तो वह छोड़ना पड़ेगा यदि बहुत सम्पत्ति है तो उस पर भी लात मारनी पड़ेगी। इसलिये आश्रम-व्यवस्था का यह आदर्श है जिसकी छाया में पड़कर न किसी को बोलशेविक बनने की ज़रूरत बाक़ी रह जाती है न अनारकिस्ट। संसार में शान्ति का साम्राज्य इसी आश्रम-व्यवस्था की मर्यादा स्थापित होने ही से हो सकता है।

छठा मन्तव्य—संस्कारों से सम्बन्धित है। संस्कार उन क्रिया विधानों का नाम है जिससे शरीर, मन और आत्मा श्रेष्ठ बनें। निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त १६ संस्कार हैं जो मनुष्य की संपूर्ण आयु में फैले हुए हैं। उनको सन्निवरण

जानने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को ऋषि दयानन्दकृत संस्कारविधि को पढ़ना चाहिये।

[ ३८ ]

## ७ वां मन्तव्य "यज्ञ"

सातवां मन्तव्य—यज्ञ से सम्बन्धित है। यज्ञ दो प्रकार के हैं—( १ ) नैत्यिक और ( २ ) नैमित्तिक, नैत्यिक ( प्रतिदिन ) करने योग्य ५ हैं (१) ब्रह्मयज्ञ सन्ध्या, (२) देवयज्ञ (अग्निहोत्र), (३) पितृयज्ञ ( जीवित माता पिता आदि की यथावत् सेवा करना ), इसी का नाम श्राद्ध भी है। भोजन कराने का नाम ही पिंडदान है और जलादि पेय पदार्थों की भेंट तर्पण कहलाता है। (४) बलिवैश्वदेव गृहस्थ-कार्य संपादन में जो अनायास कीट पतंगों की हिंसा होती है उसके प्रायश्चित्त में प्रतिदिन कृमि, पक्षी और मुहताजों के लिये भोजन से पूर्व भोजन देना इस यज्ञ का उद्देश्य है। (५) अतिथि यज्ञ-धार्मिक,

परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपातरहित, शान्त, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा करना।

ये पांच यज्ञ प्रत्येक स्त्री पुरुष को करना चाहिये। नैमित्तिक यज्ञ वे हैं जो समय २ पर ऋतु परिवर्तनादि के अवसरों पर जल वायु की शुद्धि के लिये किये जाते हैं। इनका विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

## [ ३६ ]

## "कर्म भक्ष्याभक्ष्यादि"

आठवां मन्तव्य—कर्म के सम्बन्ध में है। कर्म के सम्बन्ध में निम्न बातें ध्यान में रखने योग्य हैं:-

( १ ) कर्म सदैव करना चाहिये।

( २ ) समझना चाहिये कि कर्म करके उसके फल से कभी नहीं बच सकते।

( ३ ) कर्म यथासम्भव धर्म समझकर करना चाहिये उसमें फल की इच्छा का जोड़ना श्रेयस्कर नहीं है।

( ४ ) मनुष्य को सुख और दुःख जहां अपने कर्म के फल से प्राप्त हुआ करते हैं वहां दूसरों के कर्मों से भी प्राप्त होते हैं इसीलिये मनुष्य को जहां अपने को अच्छा बनाने का यत्न करना चाहिये वहां अपने पड़ोसी नगर और देशनिवासियों को भी अच्छा बनाने के लिये यत्नवान् होना चाहिये जिससे उनके बुरे कर्मों से उसे दुःख न उठाना पड़े ।

नवां मन्तव्य—भक्ष्याभक्ष्य के सम्बन्ध में है । मनुष्य को श्रेष्ठ बनने के लिये आवश्यक है कि तम को दूर, रज को नियमित और सत्व की वृद्धि करे । इसीलिये जो पदार्थ तमोगुण की वृद्धि करनेवाले हैं सभी अभक्ष्य हैं । जितने भी मादक-द्रव्य हैं शराब, भंग, चरस, तम्बाकू आदि सभी तमोगुण बढ़ानेवाले हैं । मांसादि भी तमोगुण वर्धक हैं इसलिये ये सब अभक्ष्य हैं । पाप से कमाये धन से भी तमोगुण की वृद्धि होती है इसलिये वह भी अभक्ष्य है ।

दसवां मन्तव्य— कुछ परिभाषायें लिखी जाती हैं जिनसे विशेष २ शब्दों के भाव ठीक २ समझे जावें:—

( १ ) अर्थ वही है जो धर्म ( उचित साधनों ) से प्राप्त किया जावे।

( २ ) काम वह जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जावे।

( ३ ) देव विद्वानों को कहते हैं। अविद्वानों को असुर, पापियों को राक्षस और अनाचारियों को पिशाच कहते हैं।

( ४ ) देवपूजा—विद्वानों, माता, पिता; अतिथि न्यायकारी राजा, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पुरुष का सत्कार करना देवपूजा कहाती है।

( ५ ) पुराण—ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मणग्रन्थों को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं।

( ६ ) तीर्थ--जिससे दुःखसागर से पार उतरें । सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, योगाभ्यास, दानादि जो शुभ कर्म हैं, वे ही तीर्थ हैं।

( ७ ) पुरुषार्थ--प्रारब्ध से बड़ा है। मनुष्य जो कर्म करता है वह क्रियमाण कहलाता है। जब कर चुकता है तब उसी किये कर्म का नाम संचित होता है और जब फल मिलने लग जाता है तब उसी का नाम प्रारब्ध हो जाता है।

( ८ ) आर्य्य श्रेष्ठ और दस्यु दुष्ट मनुष्य को कहते हैं।

( ९ ) "स्वर्ग" नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

( १० ) "नरक" जो दुःख विशेष और उसकी सामग्री की प्राप्ति करना है।

[ ४० ]

## सोलह संस्कार

(१) गर्भाधान—श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिये यह संस्कार हैं। २५ वर्ष की आयु पुरुष की और १६ वर्ष की आयु कम से कम स्त्री की होनी चाहिये तब यह संस्कार करना चाहिये। इससे पहले नहीं, गर्भाधान का समय रजोदर्शन के दिन से ४ रात्रि छोड़कर १६ वीं रात्रि तक है।

(२) पुंसवन संस्कार—गर्भ के तीसरे मास के भीतर गर्भ की रक्षा के लिये यह संस्कार किया जाता है। किन्हीं का मत है कि जब यह इष्ट हो कि संतान पुत्र हो कन्या नहीं तभी यह संस्कार करना चाहिये, परन्तु यह मत अल्प प्रतिष्ठित है। इस संस्कार में स्त्री पुरुष प्रतिज्ञा करते हैं कि वह आज से कोई ऐसा कार्य्य न करेंगे, जिससे गर्भ गिरने का भय हो।

( ३ ) सीमन्तोन्नयन—यह संस्कार गर्भ से चौथे मास में बच्चे की मानसिक शक्तियों की वृद्धि के लिये किया जाता है। इसमें ऐसे साधन किये जाते हैं जिनसे स्त्री का मन सन्तुष्ट रहे।

( ४ ) जातकर्म—यह संस्कार बालक के जन्म लेते ही किया जाता है। बालक का पिता उसकी जिह्वा पर सोने की सलाई के द्वारा घी और शहद से 'ओ३म्" लिखता है और उसके कान में "त्वं वेदोऽसि" कहता है।

( ५ ) नामकरण—जन्म से ग्यारहवें दिन या १०१ वें दिन या दूसरे वर्ष के आरम्भ में यह संस्कार किया जाता है। इसमें बालक का नाम रक्खा जाता है। नाम प्रिय तथा सार्थक रखना चाहिये।

( ६ ) निष्क्रमण—यह संस्कार जन्म से चौथे महीने में, उसी तिथि में जिसमें बालक का जन्म हुआ हो, किया जाता है। इसका उद्देश्य बालक को

उद्यान की शुद्ध वायु का सेवन और सृष्टि के अव-लोकन का प्रथम शिक्षण है।

( ७ ) अन्नप्राशन—छठे वा आठवें महीने में, जब बालक की शक्ति अन्न पचाने की हो जावे तब यह संस्कार किया जाता है।

( ८ ) चूड़ाकर्म—अथवा मुण्डन संस्कार पहिले अथवा तीसरे वर्ष में बालक के बाल काटने के लिये संस्कार किया जाता है।

( ९ ) कर्णवेध—कई रोगों को दूर करने के लिये बालक के कान वेधे जाते हैं। यह संस्कार तीसरे वा पांचवें वर्ष में करना चाहिये।

( १० ) उपनयन संस्कार—जन्म के वर्ष से सातवें वर्ष में इस संस्कार से लड़के और लड़की को यज्ञोपवीत पहनाया जाता है।

( ११ ) वेदारम्भ संस्कार—उपनयन संस्कार के दिन या उससे एक वर्ष के भीतर गुरुकुल में वेदों का आरम्भ गायत्री मन्त्र से किया जाता है।

( १२ ) समावर्तन संस्कार—इस संस्कार से ब्रह्मचर्य व्रत की समाप्ति पर वेदशास्त्रों के पढ़ने के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरुकुल छोड़कर गृहस्थाश्रम में जाता है।

( १३ ) विवाह संस्कार—विद्या समाप्ति के पश्चात् जब लड़का लड़की घर आ जावे, तब यह संस्कार किया जाता है। हर प्रकार से योग्य लड़के लड़की को इसका अधिकार है।

( १४ ) वानप्रस्थ—का समय ५० वर्ष के उपरान्त है। जब घर में पुत्र का भी पुत्र ( पोता ) हो जावे, तब गृहस्थ के धन्धों में फंसे रहना धर्म्म नहीं। उस समय वानप्रस्थ की तय्यारी के लिये यह संस्कार किया जाता है।

( १५ ) संन्यास—वानप्रस्थ में बैठकर जब सब इन्द्रियों को जीत ले, किसी के लिये मोह और शोक न रहे, तब केवल परोपकार के हेतु संन्यास आश्रम में प्रवेश करने के लिये यह संस्कार किया जाता है।

(१६) अन्त्येष्टि संस्कार—मनुष्य-शरीर का यह अन्तिम संस्कार है, जो मरने के पश्चात् शव को जलाकर किया जाता है।

[ ४१ ]

## वैदिक साहित्य

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद।

मोक्ष की प्राप्ति के लिये जिन चार साधनों की आवश्यकता है, वे इन चार वेदों में बतलाये हैं, अर्थात् ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान। चारों वेदों में चौबीस हज़ार मन्त्र और सात लाख अड़सठ हज़ार शब्द हैं। ऋग्वेद सबसे बड़ा है। उसमें दस मण्डल हैं और इन मण्डलों में १०२८ सूक्त और १०५८९ ऋचायें हैं। इन ऋचाओं में १५३८२६ पद हैं, जिनमें ४३२००० अक्षर हैं। सामवेद में १५४२ साम मन्त्र हैं। यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं

जिनमें १९७५ कण्डिकाएं और मन्त्र हैं। अथर्ववेद में २० काण्ड हैं, जिनमें ७६० सूक्त और लगभग ६००० ऋचाएं हैं।

उपवेद—चार वेदों के चार उपवेद अर्थात् अर्थवेद ऋग्वेद का, धनुर्वेद यजुर्वेद का, आयुर्वेद, अथर्ववेद का और गन्धर्ववेद सामवेद का उपवेद है।

वेदों की व्याख्या - ब्राह्मण ग्रन्थों में की गई है। गणना में तो ये अधिक हैं, परन्तु साधारण तौर पर प्रसिद्ध चार ही हैं। ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ, सामवेद का साम ब्राह्मण (ताण्ड्य या छान्दोग्य ब्राह्मण) और अथर्ववेद का गोपथ-ब्राह्मण। प्राचीन वैदिक साहित्य में इन्हीं को पुराण कहा गया है।

वेदों की शाखा—वेदों की ११३१ शाखा इस प्रकार हैं-यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १०००, ऋग्वेद की २१ और अथर्ववेद की ९ शाखायें हैं (महाभाष्य पातञ्जल)।

वेदों के अंग—छः हैं। शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छन्द। वेदों के जानने के लिये इनका जानना आवश्यक है।

वेदों के उपांग—वेदों के छः उपांग हैं। जिनको छः दर्शन अथवा छः शास्त्र भी कहते हैं।

इनके नाम ये हैं—कपिल का सांख्य, गौतम का न्याय, पतञ्जलि का योग, कणाद का वैशेषिक, व्यास का वेदान्त और जैमिनि का मीमांसा दर्शन।

उपनिषदें—जिनसे हमें ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है, उन्हें 'उपनिषद्' कहते हैं। जो उपनिषद् प्रामाणिक समझी जाती हैं, उनके नाम ये हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक।

[४२]

## प्रामाणिक ग्रन्थ

ऋषि मुनि जिन ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते आये हैं वे ग्रन्थ केवल चार वेद हैं:—

(१) ऋग्वेद
(२) यजुर्वेद
(३) सामवेद
(४) अथर्ववेद

बाकी जितने भी ग्रन्थ, अंग, उपांग, उपवेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि हैं वे वेदानुकूल होने ही से प्रमाण हैं, यदि उनकी कोई बात वेदविरुद्ध हो तो वह प्रमाण कोटि से गिर जायगी। इसी सिद्धान्त के समर्थक ऋषि दयानन्द थे और इसी सिद्धान्त को आर्य्यसमाज मानता है।

[ ४२ ]

# ऋषि दयानन्द का संक्षिप्त जीवनचरित्र और मुख्य २ घटनायें

संसार में बड़े बड़े सुधारकों और महान् पुरुषों के जन्म का कारण तत्कालीन परिस्थिति हुआ करती है। यदि यहां शूद्रों और पशुओं पर अत्याचार न होते, लाखों पशु वेदों के नाम पर वध करके उनके रक्त और मांस से यज्ञकुण्ड अपवित्र न किये जाते, यदि शूद्रों को सामाजिक अधिकारों से वञ्चित करके उनके लिये वेदों की शिक्षा और शुभ कर्म ( संस्कारादि ) का द्वार बन्द न किया जाता तो सम्भव न था कि महात्मा बुद्ध का आविर्भाव होता। इसी प्रकार यदि देश में नास्तिकता का प्रचार न बढ़ता और वेदों के अनादर और उनसे विमुख होने का भाव उत्पत्ति न करता तो सम्भव न था कि श्री शंक-

राचार्य प्रकट होते । निष्कर्ष यह है कि महान् पुरुष पैदा ही तब होते हैं जब उनकी उत्पत्ति की आवश्यकता देश में पूर्ण रीति से अनुभव होने लगती है ।

## ऋषि दयानन्द क्यों हुआ ?

ऋषि दयानन्द के जन्म का कारण भी तात्कालीन परिस्थिति ही थी । यह परिस्थिति क्या थी ? उस पर एक निगाह डालियेः—

( १ ) वेदों के नाम से लोग परिचित थे, परन्तु वेद क्या हैं, उनमें किन किन शिक्षाओं का विधान है इससे सर्वथा अनभिज्ञ थे, यही कारण था जिससे एक पुर्तगाल के पादरी ने यजुर्वेद नाम से एक कल्पित वेद गढ़कर उसमें ईसाई मत की शिक्षा अङ्कित की और अनेक लोगों को मदरास प्रान्त में वेद के नाम से ईसाई बनाने में सफलता प्राप्त की * ।

---

* इस पादरी का नाम Robart' odenoble था और यहां के लोगों को ईसाई बनाने के उद्देश्य से १६०६

(२) देश में प्राचीन वैदिक सभ्यता का मान घट रहा था और उसका स्थान अनेक उत्पातों और अत्याचारों का मूल पश्चिमीय सभ्यता ले रही थी।

(३) प्राचीन संस्कृत साहित्य निकम्मा और वेद गड़रियों के गीत समझे जाने लगे थे और देश-वासी आंख बन्द करके अङ्गरेज़ी साहित्य पर मोहित होकर विदेशियों के पीछे चलने में गौरव मानने लगे थे।

(४) जातीय (आर्य) भाषा का पढ़ना फैशन के विरुद्ध था, इसलिये हिन्दी गन्दी कहलाने लगी थी। विदेशी भाषाओं ने उसका स्थान ले रक्खा था।

(५) बाल-विवाह आदि कुरीतियों के प्रचलित और ब्रह्मचर्य के लोप होने से देशवासियों, विशेष कर हिन्दू जाति के सदस्यों में शारीरिक बल का ह्रास

ई० में यह मदुरा में आया था, उसका गढ़ा हुआ वेद पेरिस की म्यूज़ियम के पुस्तकालय में अब भी मौजूद है।

हो रहा था और इसी निर्बलता के कारण उसे समय समय पर अपमानित होना पड़ता था।

( ६ ) कर्म की निरादरता का भाव मत-मतान्तरों की कुशिक्षा से हिन्दू जाति में प्रचलित हो जाने से सर्व-साधारण की आर्थिक अवस्था ख़राब हो चली थी। अनाथ और विधवाओं की संख्या नित्यप्रति बढ़ती जाती थी और उनकी रक्षा का प्रबन्ध न होने से उन्हें विधर्मी बनना पड़ता था।

( ७ ) बाल-विवाह पराकाष्ठा को पहुंच चुका था और उसके दुष्परिणाम से हिन्दू जाति में लाखों बाल-विधवायें, जिनमें अनेक एक २ वर्ष की भी थीं, होगई थीं और उनका विवाह न होने से भ्रूण-हत्या, गर्भपात, नवजात बालक वध आदि अनेक पातक थे जो हिन्दू जाति के लिये कलंक का टीका बन रहे थे।

( ८ ) जन्म की जाति प्रचलित होने और खान पान में छुआ छूत की मात्रा बढ़ जाने से हिन्दुओं में परस्पर घृणा का भाव बराबर बढ़ता चला जा रहा था।

( ९ ) शूद्र और दलित जातियों के साथ उच्च जातियों का व्यवहार अत्यन्त अनुचित आक्षेप के योग्य और असह्य था और इसीलिये ये दलित भाई बहुसंख्या में ईसाई और मुसलमान बन रहे थे।

( १० ) स्त्रियों का मान नित्यप्रति घटता चला आ रहा था। वे शिक्षा की अनधिकारिणी समझी जाने लगी थीं। उनकी अवस्था का चित्र तुलसीदास की इस चौपाई से भलीभांति खिंच जाता है:—

ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

( ११ ) हिन्दू जाति ईश्वर से विमुख हो रही थी। अपने हाथ से गढ़ी हुई पीतल और पत्थर की मूर्तियों को पूजने लगी थी। एक ईश्वर मानने की जगह (समस्त हिन्दू आबादी के डेढ़ गुने से अधिक) ३३ करोड़ देवी देवताओं को, मियां, मसानी और क़ब्रों के सिवा, मानने लगी थी।

ये और ऐसी ही और भी अनेक परिस्थिति थीं जिन्होंने ऋषि दयानन्द को पैदा किया।

## ऋषि दयानन्द को इस परिस्थिति का ज्ञान क्योंकर हुआ ?

ऋषि एक औदीच्य ब्राह्मणों के श्रेष्ठ घरानों में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम करसनजी तिवारी और इनका नाम मूल जी दयाराम था। जन्मस्थान काठियावार अन्तर्गत मौरवी राज्य का एक नगर टंकारा है। एक बार जब उनकी आयु केवल १४ वर्ष की थी शिवरात्रि के अवसर पर उनके पिता ने उन्हें शिवरात्रि का व्रत रखने के लिये विवश किया। व्रत रक्खा गया। रात्रि में जब उनके पिता अन्य दर्शकों के साथ शिव की पूजा करके चढ़ावा चढ़ा चुके और शिव की आराधना के विचार से अन्यों के साथ मूर्ति के सामने बैठ गये तो ऊँघने लगे, परन्तु ऋषि दयानन्द जागते थे। इसी बीच में एक चूहा आया और शिव की मूर्ति पर

चढ़कर मज़े से चढ़ावे की वस्तु को चखने लगा। स्वामी दयानन्द इस घटना को देखकर चकित हो गये कि यह कैसा शिव है जो चूहे से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता? पिता को जगाकर अपना संदेह प्रकट किया परन्तु उत्तर डांट डपट के सिवाय कुछ न मिला। इस घटना ने दयानन्द की आंखें खोल दीं * उन्हें प्रचलित मूर्तिपूजा की निस्सारता का ज्ञान हो गया।

## एक दूसरी घटना

इस चूहे वाली घटना के कुछ दिन बाद ही स्वामीजी की भगिनी और उसके बाद उनके चचा का देहपात हो गया। ये दोनों व्यक्ति उन्हें बहुत प्रिय थे। इस घटना ने मृत्यु का प्रश्न व्यक्त रूप में उनके सम्मुख उपस्थित कर दिया और वे सोचने लगे कि

---

* सर सय्यद अहमदखां ने इसी घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह इलहाम नहीं था तो क्या था?

यह मृत्यु क्या वस्तु है और किस प्रकार मनुष्य उस पर विजय पाकर मृत्युञ्जय हो सकता है *

## योगाभ्यास और तपस्वी जीवन

इन समस्याओं के हल करने की इच्छा इतनी प्रबल हुई कि उन्होंने पैतृक सम्पत्ति पर लात मार कर भारतवर्ष के प्राचीन विश्वविद्यालय (जंगल) की राह ली। संन्यास की दीक्षा ली। मूलजी दयाराम से दयानन्द सरस्वती बने और योगाभ्यास करते हुए तपस्या का जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। शरीर पर एक कोपीन के सिवा कोई वस्त्र नहीं रक्खा। नर्मदा के तट से लेकर हिमालय की बरफानी चोटीं और दुष्प्रवेश कन्दराओं तक पर्यटन करते जिससे जो कुछ मिला सीखा। शीत की ऋतु,

---

* गौतम बुद्ध ने पहली वार जब एक शव को श्मशान में ले जाते देखा तो उनके सामने भी यही मृत्यु का प्रश्न उपस्थित हुआ था और इसी प्रश्न ने उन्हें भी घर छोड़ने के लिये बाधित किया था।

में बर्फ से जमी हुई एक नदी को पार करना था जब कि पिशाचिनी भूख ने भी सता रक्खा था। नग्न शरीर ही से बर्फ की चट्टानों से टकराते, गिरते पड़ते किसी प्रकार नदी को पार किया और इन्हीं बर्फ की चट्टानों में से दो एक टुकड़े बर्फ के तोड़ और खाकर भूख को भी शान्त किया। ये सब कष्ट, जिनके स्मरणमात्र से बड़े २ शूरवीरों के भी हृदय कांप उठते हैं, प्रसन्नता से सहन करते हुए ज्यों ज्यों शिक्षा और दीक्षा से बल और ज्ञान-वृद्धि करते जाते थे स्वामी दयानन्द अपने में साहस और उत्साह की मात्रा की अधिकता से अनुभव करते जाते थे। इसीलिये जो क़दम उठता था आगे ही पड़ता था पीछे फिरने का विचार भी नहीं आता था। कठिन से कठिन झाड़ियों को हाथों और पाओं के सहारे से पार करना उनके लिये साधारण काम हो गया था। एक झाड़ी को पार करते हुए सामने एक भयानक रीछ आ गया और आक्रमण करना

ही चाहता था कि दयानन्द ने निर्भीकता से जमकर खड़े होकर अपने दण्ड को पृथ्वी पर ठोंक दिया इसी से वह रीछ साहस छोड़कर भाग गया। यह था अखंड ब्रह्मचर्य का बल। यह था आत्मशक्तियों के विकास का परिणाम जिसने स्वामी दयानन्द को इस १९ वीं शताब्दी में भी प्राचीन काल के ऋषि मुनियों का उदाहरण बना रक्खा था। इस प्रकार तपस्या का जीवन व्यतीत करते और योगाभ्यास करते हुए समाधिपर्यन्त योग की शिक्षा प्राप्त की और अपने शरीर को फौलाद का शरीर बनाते हुए मथुरा में पहुंचे और अपने अन्तिम गुरु स्वामी विरजानन्द का द्वार खटखटाया। ३ वर्ष तक इस अद्भुत गुरु के चरणों में बैठकर स्वामी दयानन्द अष्टाध्यायी महाभाष्य की शिक्षा पाने और अनेक ऋषिप्रणीत ग्रन्थों की जानकारी प्राप्त करते हुए सब से बड़ी वस्तु वेदार्थ करने की कुंजी प्राप्त करते हैं।

## गुरु-दीक्षा और कार्य्यक्षेत्र में प्रवेश

शिक्षा और दीक्षा समाप्त होगई सही, परन्तु स्वामीजी का इस अन्तिम गुरु से छुटकारा पा लेना सुगम कार्य न था। इस अद्भुत गुरु की गुरुदीक्षा भी अद्भुत थी। इसने स्वामी दयानन्द से वचन ले लिया कि वे अपना सारा अवशिष्ट जीवन वेद-प्रचार, पाखंड-खंडन, मानव जाति के उद्धार और प्राचीन आर्य-सभ्यता के विस्तार में लगावेंगे।

## पाखंड-खंडनी पताका

उपर्युक्त कार्य करते हुए स्वामी दयानन्द हरद्वार के जगत्-प्रसिद्ध मेले कुम्भ में पहुंच कर अपना एक कैम्प पृथक् लगाते हैं और उन्होंने जो पताका लगाई उस पर "पाखंडखंडनी" लिखा हुआ था। अनेक स्त्री पुरुष, साधु-संन्यासी, पण्डित विद्वान् वहां आते और प्रश्नोत्तर करते रहे। स्वामीजी पाखंडों को छोड़ कर वैदिक शिक्षानुसार आचरण करने की शिक्षा देते रहे। मेले के अन्त तक यह काम जारी रहा। मेला

समाप्त होने पर उनके हृदय में एक विचार आया और वह यह था कि उनके उपदेशों का जितना प्रभाव होना चाहिये था नहीं हुआ। इसके हेतु पर विचार करते हुए उन्होंने निश्चय किया कि अभी उनमें तप की कमी है और इसीलिये मेले के समाप्त होते ही सर्वमेध यज्ञ करके जितनी भी वस्तुयें उनके पास थीं सब एक २ करके दे डालीं और एक कोपीन के सिवा फिर अपने पास कुछ नहीं रक्खा और गंगा-तट पर भ्रमण और निवास करते हुए तपस्वी जीवन रखते हुए प्रचार करते रहे।

## एक अद्‌भुत दृश्य

कर्णवास के निकट गंगा की रेती है, रात्रि का समय है, चांदनी खिल रही है, शीतल वायु अपना प्रभाव रेती पर डाल रहा है। उसी रेती पर एक नग्न शरीर केवल कोपीनधारी आदित्य ब्रह्मचारी लेटा हुआ प्रभु के महान् यश को आंखें पसार पसार कर देख रहा है। हृदय मग्न और चित्त

प्रफुल्लित हैं। मन आह्लादित हो रहा है। ऋषि दयानन्द के द्वन्द से रहित स्वच्छ हृदय में कोई चिन्ता है तो आर्य जाति के भविष्य की, कोई सोच है तो गिरे हुए भारतवर्ष की, कोई कामना है तो वेदप्रचार की। अहा कैसा अपूर्व दृश्य! एक तपस्वी ईश्वर के प्रेम में मग्न होते हुए भी मानव जाति के उद्धार की चिन्ता में निमग्न हैं। धन्य है भारत-भूमि! धन्य है ऋषि मुनियों की जन्म दात्री भूमि! धन्य है वैदिक सभ्यता की प्रसारकर्त्री भूमि तेरे सिवाय किस में सामर्थ्य है कि दयानन्द जैसा पुत्र उत्पन्न कर सके। तेरे सिवाय किस में शक्ति है कि ऐसा निष्काम तपस्वी वीर पैदा कर सके!

## ऋषि दयानन्द के जीवन की कुछेक मुख्य घटनायें

ऋषि दयानन्द का जीवन अपूर्व और अलौकिक घटनाओं की लम्बी शृंखला है उसमें से कुछ घटा-नाओं का यहां उल्लेख किया जाता है:—

( १ ) अनूपशहर की घटना है कि एक दिन एक पुरुष स्वामीजी के पास आया और बड़ी नम्रता प्रदर्शित करते हुए एक पान का बीड़ा स्वामीजी को भेंट किया। स्वामीजी को मुंह से रखते ही मालूम हो गया कि इसमें विष मिला हुआ है। वस्ती और न्यौली क्रिया करके उन्होंने उसके प्रभाव को नष्ट कर दिया। जब यह हाल वहां के मजिस्ट्रेट सय्यद मुहम्मद को मालूम हुआ तो उन्होंने उस दुष्ट व्यक्ति को पकड़वा कर हवालात में बन्द करा दिया और स्वयं स्वामीजी के पास अपनी कारगुज़ारी प्रकट करने के लिये आये, परन्तु उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने देखा कि स्वामीजी उनके इस कृत्य से अप्रसन्न हैं। स्वामीजी ने उस व्यक्ति को छुड़वा दिया और कहा कि "मैं दुनियां को क़ैद कराने नहीं किन्तु क़ैद से छुड़ाने आया हूं"।

( २ ) कर्णवास की एक घटना है कि एक दिन स्वामीजी गंगा-तट पर उपदेश दे रहे थे। नरोली

के राव कर्णसिंह अपने कुछेक हथियारबन्द साथियों के साथ वहां आये और बात चीत करते करते ही बड़े क्रोध में आगये और तलवार खींच कर स्वामीजी पर आक्रमण किया। स्वामीजी ने तलवार छीन कर दो टुकड़े कर दिये और राव के हाथ को पकड़ कर कहा कि "मैं तुम्हारे साथ इस समय वही सलूक कर सकता हूं जो किसी "आततायी" के साथ किया जा सकता है, परन्तु मैं संन्यासी हूं इसलिये छोड़ता हूं। जाओ ईश्वर तुम्हें सुमति देवे।"

( ३ ) कर्णवास ही की एक दूसरी घटना है कि अनूपशहर के एक संस्कृतज्ञ विद्वान् पं० हीरावल्लभ अपने कुछेक साथियों के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये स्वामीजी के पास गये। सभा संगठित हुई। हीरावल्लभजी ने बीच में ठाकुरजी का सिंहासन, जिस पर शालिग्राम आदि की मूर्तियां थीं, रख कर सभा में प्रतिज्ञा की कि मैं स्वामीजी से इन्हें भोग लगवा कर उठूंगा। छः दिन तक बराबर शास्त्रार्थ होता

रहा। सातवें दिन पं० हीरावल्लभ ने सभा में प्रकट कर दिया कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं अर्थात् "मूर्ति-पूजा वेदविरुद्ध है" वही ठीक है और सिंहासन से मूर्तियों को उठाकर गंगा में प्रवाहित कर दिया और सिंहासन पर वेद की स्थापना की।

( ४ ) प्रयाग की एक घटना है कि एक दिन स्वामीजी सभा में विराजमान थे, पं० सुन्दरलालजी आदि नगर के अनेक गण्यमान्य पुरुष वहां उपस्थित थे। स्वामीजी यकायक हंस पड़े। कारण पूछने पर बताया कि एक आदमी मेरे पास आता है उसके आने पर एक कौतुक दिखाई देगा। थोड़ी सी देर के बाद एक व्यक्ति स्वामीजी के लिये मिठाई लाकर कहने लगा कि महाराज इस में से कुछ भोग लगावें। स्वामीजी ने उसमें से थोड़ी सी मिठाई लाने वाले को देना चाहा और कहा कि तुम इसे खावो, परन्तु उसने मिठाई लेने और खाने से साफ इन्कार कर दिया। स्वामीजी इस पर हँस पड़े और पं० सुन्दर-

लालजी आदि उपस्थित महानुभावों से कहा कि इस मिठाई में विष मिला हुआ है, जाँच के लिये थोड़ी मिठाई एक कुत्ते को खिलाई गई। कुत्ता मिठाई खाते ही मर गया। इस पर उपस्थित सज्जनों ने मिठाई लाने वाले को मिठाई के समेत पकड़वाना चाहा, परन्तु स्वामी दयानन्द ने उसे छुड़वा दिया और कहा कि 'देखो यह अपने पाप से स्वयं लज्जित है और कांप रहा है। इसे पर्याप्त दंड मिल गया अब और किसी दंड की ज़रूरत नहीं है"। यह थी ऋषि दयानन्द की सहनशीलता !

( ४ ) उदयपुर की एक घटना है कि एक दिन कतिपय सज्जनों के साथ ऋषि दयानन्द भ्रमण करने जा रहे थे। रास्ते में एक बालिका को देखकर सर झुका दिया। कारण पूछने पर प्रकट किया कि "यह मातृ-शक्ति है, जिसने हम सब को जन्म दिया है"। इसी प्रकार के सम्मान का भाव जब किसी जाति के पुरुषों में हो तभी वह जाति सभ्य कहलाई जा सकती है।

( ६ ) एक दिन बरेली में स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे, व्याख्यान में नगर के गण्यमान्य पुरुष और बड़े बड़े राजकर्मचारी कमिश्नर आदि सभी उपस्थित थे। व्याख्यान में ईसाईमत का खूब खण्डन किया गया। दूसरे दिन व्यख्यान से पूर्व उनसे नगर के कुछ लोगों ने कहा कि आज के व्याख्यान में ईसाई मत का खण्डन न करें इससे कमिश्नर आदि अप्रसन्न हो जावेंगे। व्याख्यान में कमिश्नर आदि सभी मौजूद थे स्वामीजी ने गरज कर कहा—"लोग कहते हैं कि आप असत्य का खण्डन न कीजिये इससे कमिश्नर अप्रसन्न होगा, कलेक्टर नाराज़ होगा, परन्तु चाहे चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो जावे हम तो सत्य ही कहेंगे।" इसको कहते हैं सत्य पर अटल विश्वास !

( ७ ) उदयपुर की एक दूसरी घटना है। एक दिन स्वामीजी श्री महाराणा सज्जनसिंह को मनुस्मृति पढ़ा रहे थे। पाठ पढ़ाते हुए उन्होंने कहा "यदि

कोई अधिकारी धर्मपूर्वक आज्ञा दे तभी उसका पालन करना चाहिये।" इस पर सरदारगढ़ के ठाकुर मोहनसिंह ने कहा कि महाराणा हमारे राजा हैं यदि इनकी कोई बात हम अधर्म युक्त बतला कर न मानें तो ये हमारा राज्य ही छीन लें। इस पर स्वामीजी ने कहा "धर्महीन हो जाने और अधर्म के काम करके अन्न खाने से तो भीख मांग कर पेट का पालन करना अच्छा है।"

(८) एक तीसरी घटना उदयपुर की और है। एक दिन एकान्त में स्वामीजी से उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी ने कहा कि "महाराज! आप मूर्तिपूजा का खण्डन छोड़ देवें। आप स्वयं मूर्तिपूजा न भी करें तो भी एकलिंग महादेव की गद्दी, जिसके साथ लाखों रुपये की जायदाद लगी है, आपकी हो जायगी।" इस पर स्वामीजी ने उत्तर दिया "आपके सारे राज्य से मैं एक दौड़ लगाकर बाहर जा सकता हूं। फिर मैं किस प्रकार इस तुच्छ प्रलो-

भन में आकर ईश्वर की आज्ञा को भंग करूं। यह था सच्चा त्याग !

( ९ ) जोधपुर की वेश्या के षड्यन्त्र में फंस कर लालची जगन्नाथ ने, स्वामीजी का विश्वासपात्र पाचक होते हुए भी, स्वामीजी को बारीक पिसा हुआ कांच दूध में मिलाकर पिला दिया। स्वामीजी ने प्रकट हो जाने पर जगन्नाथ को कुछ न कह कर कहा कि "जगन्नाथ ! ले ये कुछ रुपये हैं, इन्हें लेकर नैपाल राज्य आदि किसी ऐसे स्थान पर चला जा, जहां तू पकड़ा न जा सके और तुझे अपने प्राण न खोने पड़ें।" आहा ! इस उदारता का भी कुछ ठिकाना है जो अपने घातक को भी पीड़ित नहीं देखना चाहता।

( १० ) पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम. ए. साइन्स के उच्च कोटि के विद्वान् थे, परन्तु उन्हें ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं था। स्वामीजी के जीवनान्त समय वे भी अजमेर गये हुए थे। स्वामीजी ने

सब से आवश्यक बात चीत करने के बाद कहा कि अब सब पीछे हो जावें। सब पीछे होगये, परन्तु गुरुदत्त एक कोने में छिप कर इस तरह खड़े हो गये कि उनको तो स्वामीजी न देख सकें, परन्तु वे स्वामीजी को देख सकें। स्वामीजी मृत्यु-शय्या पर बैठ जाते हैं। कुछ प्राणायाम करने बाद वेदमन्त्रों का उच्चारण करने लगे। मन्त्रोच्चारण करते २ एक साथ उनके चेहरे पर मुसकराहट आगई। गुरुदत्त के लिये यह मुसकराहट एक समस्या थी। वह सोचता है कि वही मौत, जिसका नाम सुनकर ही लोग कानों पर हाथ रक्खा करते हैं, इस महापुरुष के सम्मुख उपस्थित है, परन्तु यह भयभीत होने के स्थान में मुस्करा रहा है। स्वामीजी की यह मुसकराहट मानो एक विद्युत् थी जिसने गुरुदत्त के हृदय में प्रवेश करके नास्तिकता के कूड़ा करकट को, जो वहां जमा था, भस्म कर दिया। महान् पुरुषों के जीवन ही नहीं किन्तु मृत्यु भी शिक्षाप्रद होती है।

## आर्य समाज की स्थापना

आर्य-समाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द के जीवन का दिग्दर्शन पाठकों को केवल इसीलिये कराया गया कि जिससे वे अन्दाज़ा कर सकें कि आर्य-समाज की बुनियाद किन हाथों से रक्खी गयी है। जो सुधार का कार्य ऋषि दयानन्द ने उपर्युक्त भाँति शुरू किया था वह उनके बाद भी क़ायम रह सके और बराबर उन्नति करता जाय, इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखते हुए उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज का जो कुछ भी उद्देश्य उन्होंने रक्खा था उसको स्पष्ट रीति से आर्यसमाज के नियमों में वर्णन कर दिया।

## दयानन्द उपकार-स्मरण

(१)

आनन्द सुधासार दया कर पिला गया।
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया॥
डाला सुधार-वारि, बढ़ी बेल, मेल की।
देखो समाज-फूल फबीले खिला गया॥

काटे कराल जाल-अविद्या-अधर्म के ।
विद्या-वधू को धर्म धनी से मिला गया ॥
ऊँचे चढ़े न क्रूर कुचाली गिरा दिये ।
यज्ञाधिकार वेद-पढ़ों को दिला गया ॥
खोली कहां न पोल ढके ढोंग ढोल की ।
संसार के कुपन्थ मतों को हिला गया ॥
'शंकर' दिया बुझाय दिवाली को देह का ।
कैवल्य के विशाल वदन में बिला गया ॥

( २ )

दयानन्द देशहितकारी, तेरी हिम्मत की बलिहारी ॥टेक॥
अविद्या जग में छाई थी, बला ग़फ़लत की आई थी ।
तेरा आना था गुणकारी, तेरी हिम्मत० ॥ १ ॥
तू वेदों का प्यारा था, तू भारत का सितारा था ।
तेरे दर्शन की बलिहारी, तेरी हिम्मत० ॥ २ ॥
तेरे जो पास आते थे, दिली संशय मिटाते थे ।
सभी भारत के नर नारी, तेरी हिम्मत० ॥ ३ ॥
चलाई ब्रह्म की पूजा, समाजें बन गईं हर जा ।
तेरा उपकार है भारी, तेरी हिम्मत० ॥ ४ ॥

( ३ )

देखो तो स्वामी कैसा उपकार कर गया है ।
भारत निवासियों को बेदार कर गया है ॥ देखो० ॥
बेहोश बेख़बर हम सोये हुए पड़े थे ।
सबको जगा जगाकर हुशियार कर गया है ॥ देखो० ॥
भारत की दुर्दशा में कोई कसर नहीं थी ।
करके समाज क़ायम उद्धार कर गया है ॥ देखो० ॥
वेदों का नाम तक भी भूले थे लोग सब ही ।
वह हर जगह पै उनका विस्तार कर गया है ॥ देखो० ॥
वेदों का भाष्य करके विद्या व योग-बल से ।
सच्चे धरम के ज़ाहिर इसरार कर गया है ॥ देखो० ॥
संस्कृत-धर्म भाषा जो हो चुकी थी मुर्दा ।
उसको जिला के फिर से जांदार कर गया है ॥ देखो० ॥
हिन्दू गुलाम काफ़िर कहलाने जो लगे थे ।
आर्य्य बना फिर उनको सरदार कर गया है ॥ देखो० ॥
मत और मतान्तरों की दीवार और क़िलों को ।
युक्ती के फावड़े से मिसमार कर गया है ॥ देखो० ॥

गुरुकुल का वह तरीक़ा बतला के आर्य्यों को ।
ब्रह्मचर्य्य—आश्रम का उद्धार कर गया है ॥ देखो० ॥
होने न पावे कोई ईसाई और मुसलमां ।
यों आर्य्यों की सेना तैयार कर गया है ॥ देखो० ॥
बेकस यतीम बच्चे मां बाप ने बिसारे ।
सब आर्य्यों को उनका ग़मख्वार कर गया है ॥ देखो० ॥
क्योंकर भला समावे गागर में नीर सागर ।
क्योंकर बयां हो सारे जो कार कर गया है ॥ देखो० ॥
माने न माने कोई पर सच तो ये है 'सालिग' ।
बाग़ धरम की स्वामी गुलज़ार कर गया है ॥ देखो० ॥

( ४ )

मह-ऋषी ! ख़ाक नशीनों को उठाया तूने,
'नारए 'ओम्' से सोतों को जगाया तूने ।
कुफ़्रो इसलाम के झन्डों को हिलाया तूने,
धर्म की डूबती किश्ती को बचाया तूने ॥
वेद का अज़सरे-नौ हिन्द में प्रकाश हुआ,
'आर्य्य-धर्म' पर हरएक को विश्वास हुआ ।

सच है देश का उपकार तेरे दम से हुआ,
दूर भारत का सब अद्बार तेरे दम से हुआ।
देव-वाणी का भी प्रचार तेरे दम से हुआ,
गर्म हिन्दी का यह बज़ार तेरे दम से हुआ॥
अन्ध-विश्वास से लोगों को निकाला तूने,
कर दिया आके अंधेरे में उजाला तूने।
सब से पहिले दलितोद्धार का था तुझको ख़याल,
तुझको था दर्द कि यह होने न पाए पामाल।
कोई पैदायशी पण्डित है न कोई चण्डाल,
है वही नेक जो दुनियां में करे नेक अफ़ाल॥
झूठा अभिमान बड़ाई का है इन्सानों में,
अपना मुंह डाल के देखें तो गिरेबानों में।
ज़ोम बातिल जो था वह तूने उसे दूर किया,
नाश अविद्या का किया कुफ़्र को काफ़ूर किया।
वेद के नूर ने संसार को पुरनूर किया,
तुझको क़ुदरत ने था इस काम पै मामूर किया॥
तू कोई धर्म का अवतार था भारत के लिये,
बेख़ोबुनियाद था इस क़ौमी इमारत के लिये॥

( ५ )

ऋषि दयानन्द ने जगाया

हमारे बाजू हिला हिला कर।

कि सोने वालो ज़रा तो चेतो

सर अपना ग़फ़लत से तुम उठा कर ॥

चढ़ी है तुमको गज़ब की मस्ती

रही है कुछ चन्द रोज़ हस्ती।

ग़ज़ब की छाई घटायें तुम पर

संभालो अपने को होश लाकर ॥

तुम्हारे पुरखा कणादि गौतम

कपिल पतंजलि थे व्यास भीष्म।

हुये हैं मशहूर जगमें सारे

पड़े हो तुम उनकी सुध भुला कर ॥

कहीं मुहमदी कहीं मसीही

बनी है ग़फ़लत में क़ौम उनकी।

बनाओ जल्दी से वेदधर्मी

प्रकाश वेदों का तुम दिखा कर ॥

हटाओ अपने से बुज़दिली को
दिखाओ कुछ अपनी मर्दुमी को।
पड़े हो ग़फ़लत में कैसे 'फ़ाजिल'
बहादुराना हुनर भुला कर॥

( ६ )

वेदों का डंका आलम में बजवा दिया देव दयानन्द ने।
हर जगह ओ३म् का झंडा
फिर फहरा दिया देव दयानन्द ने॥
अज्ञान अविद्या की हरसू घनघोर घटाएं छाईं थीं।
कर नष्ट उन्हें जग में प्रकाश
फैला दिया देव दयानन्द ने॥
सर पर तूफान बला का था नज़रों से दूर किनारा था।
बनकर मल्लाह किनारे पर
पहुंचा दिया देव दयानन्द ने॥
घुस गये लुटेरे घर में थे सब माल लूट कर ले जाते।
सद् शुक्र हाथ सोतों का पकड़
बिठला दिया देव दयानन्द ने॥

मक्कारी दग़ा फ़रेबों से जो माल लूट कर खाते थे।
सब पोल खोल कर दिल उनका
दहला दिया देव दयानन्द ने ॥
उड़ गये होश मतवालों के मैदान छोड़ कर रफ़ू हुए।
हथियार तर्क का निकाल जब
चमका दिया देव दयानन्द ने ॥
क़बरों में सरको पटकते थे कोई दहरो हरम में भटकते थे।
दे ज्ञान उन्हें मुक्ती का मार्ग
दिखला दिया देव दयानन्द ने ॥
करते थे हमेशा चीख चीख तौहीन वेद अक़्दस की जो।
सर उनका वेदों के आगे
झुकवा दिया देव दयानन्द ने ॥
सब छोड़ चुके थे कर्म धर्म गौरव गुमान ऋषि मुनियों का।
फिर संध्या हवन यज्ञ करना
सिखला दिया देव दयानन्द ने ॥
विद्यालय गुरुकुल खुलवाये क़ायम हर जगह समाज किये।
आदर्श पुरातन शिक्षा का
बतला दिया देव दयानन्द ने ॥

बलिदान किया बलि वेदी पर जीवन-प्रकाश हंसते हंसते।
सच्चे रहबर बन कर सब को
चेता दिया देव दयानन्द ने ॥

[ ४४ ]

# ऋषि दयानन्दकृत ग्रन्थ

१ सत्यार्थप्रकाश—(आर्य भाषा) इस पुस्तक को पढ़कर जहां मनुष्य को अपने धर्म का वास्तविक ज्ञान हो जाता है, वहां संसार के अन्य मतमतान्तरों का भी बोध हो जाता है। यह एक 'अद्वितीय' पुस्तक है। इसके पाठ से किसी मनुष्य को भी, चाहे वह किसी धर्म को मानने वाला क्यों न हो, वंचित न रहना चाहिये। मूल्य आर्यभाषा ॥=)

२ संस्कारविधि—इस में मनुष्य जीवन का प्रोग्राम (समय-विभाग) लिखा है और बतलाया गया है कि सोलह संस्कारों के करने ही से मनुष्य सम्पूर्ण मनुष्य बन सकता है। मूल्य ।=)

३ ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका—इस पुस्तक को पढ़े बिना वेदों का अर्थ समझना कठिन है। यह चारों वेदों के भाष्यों की भूमिका है। मूल्य १=)

४ ऋग्वेदभाष्य—इस में महर्षि ने ऋग्वेद का भाष्य और व्याख्या की है। प्रत्येक आर्यभाषा जानने वाला इसको पढ़कर जान सकता है कि वेदों में कैसे कैसे रत्न भरे पड़े हैं। मूल्य ४२)

५ यजुर्वेद-भाष्य—इसमें यजुर्वेद का भाष्य है। मूल्य १=)

६ यजुर्वेदभाषाभाष्य—इसमें यजुर्वेद का केवल भाषा अनुवाद है। मूल्य ४)

७ भ्रान्ति-निवारण—इसमें पौराणिक मत के सब वेद-भाष्य-कर्ताओं का खण्डन किया गया है। मूल्य =)

८ भ्रमोच्छेदन—इस में महर्षि ने पौराणिक सिद्धान्त का खण्डन किया है। मूल्य -)

९ स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश—इसमें ऋषि के मन्तव्य दिये हैं। मूल्य )॥

१० वेदविरुद्धमतखण्डन—इसमें मूर्तिपूजा आदि साम्प्रदायिक बातों का खण्डन किया गया है। मूल्य =)॥

११ काशी शास्त्रार्थ—स्वामीजी का पौराणिक पंडितों से शास्त्रार्थ। मूल्य -)

१२ पञ्चमहायज्ञविधि—आर्यों की नित्य-कर्मविधि -)॥

१३ आर्याभिविनय—ऋषिकृत प्रार्थना पुस्तक है। घटिया का मूल्य ।-), बढ़िया का ॥=)

१४ नारायण स्वामीमतखंडन—मूल्य =)

१५ वेदान्तध्वान्त निवारण—नवीन वेदान्त का खण्डन। मूल्य -)॥

१६ सत्यधर्मविचार—ईसाइयों तथा यवनों से शास्त्रार्थ। मूल्य -)॥

१७ आर्योद्देश्यरत्नमाला—समस्त सिद्धान्तों का संग्रह । मूल्य )।

१८ गोकरुणानिधि—मांसभक्षण के विरुद्ध अत्यन्त उपयोगी पुस्तक । मूल्य -)।।।

१९ वेदांगप्रकाश—१४ भागों में संस्कृत व्याकरण सीखने के लिए यह एक अद्भुत पुस्तक है। मूल्य २॥=)

कौमुदी आदि निकम्मे ग्रन्थों को त्याग कर इसका प्रचार करो ।

२० विवाहपद्धति—मूल्य ।)

२१ व्यवहारभानु—बालकों के लिए उपदेश । मूल्य =)॥

२२ संस्कृतवाक्यप्रबोध—संस्कृत सीखने की उत्तम पुस्तक । मूल्य =)॥

२३ वेदभाष्य का नमूना—अर्थात् ऋग्वेद के प्रथम सूक्त की व्याख्या -)

[ ४५ ]

# आर्य्यसमाज का विस्तार और उसके काम

यह आवश्यक है कि आर्य्यसमाज के कामों का भी पाठकों को दिग्दर्शन करा दिया जावे। उनका विवरण इस प्रकार है—

( १ ) प्रचार—आर्य्यसमाज के प्रचारकार्य्य का फल यह है कि इस समय समस्त पृथिवी पर १७०० के लगभग आर्य्यसमाज खुले हुए हैं। ईस्ट अफ्रीका, दक्षिणी अफ्रीका, मौरीशस और फिजीद्वीप में आर्य्यसमाज इतने बहुतायत से हैं कि वहाँ प्रतिनिधि सभायें भी स्थापित हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त के सिवा, अफ्रीका, अरब, फारस, अफ़ग़ानिस्तान, बिलोचिस्तान, मेसोपुटेमियां, असीरिया, जर्मनी, इङ्गलैण्ड, अमेरिका, सिंगापुर, ब्रह्मा, स्याम, अनाम, कम्बोडिया, हांगकांग ( चीन ) में भी

आर्यसमाज स्थापित हैं और अपना अपना काम कर रहे हैं।

इस समय ११२ संन्यासी, २६ वानप्रस्थी, ७ अवैतनिक और १२६ वैतनिक उपदेशक और उपदेशिकायें वैदिकधर्म का प्रचार कार्य्य कर रहे हैं।

## शिक्षासम्बन्धी संस्थायें

( १ ) ४३ गुरुकुल और उनकी शाखायें।
( २ ) ३ प्रथम श्रेणी के कालेज।
( ३ ) ७ द्वितीय श्रेणी के कालेज।
( ४ ) १०० के लगभग हाई स्कूल।
( ५ ) २ कन्याओं के महाविद्यालय (कालेज)।
( ६ ) २३१ कन्या-पाठशालायें।
( ७ ) ११२ संस्कृत और हिन्दी पाठशालायें।
( ८ ) २४७ दलितों की पाठशालायें।
( ९ ) ३४ रात्रि पाठशालायें।
(१०) ३ उपदेशक विद्यालय।

## अन्य संस्थायें

( १ ) २३ अनाथालय ।

( २ ) ४७ विधवा-आश्रम ।

( ३ ) ११ प्रेस ।

( ४ ) ३७ समाचारपत्र और मासिक पत्रिकायें ।

( ५ ) ४६ पुस्तकालय, उनके सिवा जो प्रत्येक समाज में होते हैं ।

## आर्य्यसमाज का संगठन

आर्यसमाज का संगठन इतना दृढ़ और श्रेष्ठ है कि अनेक बार बृटिश गवर्नमेन्ट को धोखा हुआ कि आर्य्य-समाज धार्मिक नहीं किन्तु राजनैतिक संगठन है ।

( १ ) प्रत्येक नगर में आर्य्यसमाज स्थापित है ।

( २ ) प्रत्येक प्रान्त में एक २ प्रान्तिक प्रतिनिधि-सभायें हैं ।

( ३ ) समस्त प्रान्तिक प्रतिनिधि सभाओं के ऊपर एक सार्वदेशिक सभा है जो आर्य्यसमाज के संगठन की सबसे बड़ी सभा है । इसी अन्तिम सभा

के आधीन एक आर्यरक्षासमिति है जिसका काम है कि प्रत्येक सरकारी और गैर-सरकारी आक्रमणों से आर्यसमाज की रक्षा करे और एक दूसरी दलितोद्धार सभा है जो समस्त दलितों के सम्बन्ध में आवश्यक सुधार कर रही है।

आर्यसमाज के मन्तव्य और कार्य दोनों जनता के सन्मुख रखते हुए एक प्रश्न है जो सर्वसाधारण से किया जाता है कि क्या इन सेवाओं को करते हुए आर्यसमाज अधिकारी है कि उनका कृपाभाजन बने ? यदि हां तो फिर उन्हें तन, मन और धन प्रत्येक प्रकार से उसकी सहायता करनी चाहिये।

[ ४६ ]

## याद रखने योग्य आप्त-वचन

( १ ) न मृत्यवे अवस्थे कदाचन ( मैं कदापि नहीं मर सकता )

( २ ) मैं आत्मा हूं शरीर नहीं।

( ३ ) आत्मा अमर है इसलिये मैं अमर हूं।

( ४ ) आत्मा को हथियार काट नहीं सकते इसलिये मैं मशीनगनों के भय से स्वतन्त्र हूं।

( ५ ) शरीर वस्त्र के सदृश है आत्मा उसे सदैव बदलता रहता है।

( ६ ) यदि इस्तैमाली वस्त्र ( शरीर ) उतार दिया जावे तो कुछ हानि नहीं, क्योंकि उसके बदले में बिलकुल नया वस्त्र ( शरीर ) मिल जाता है।

( ७ ) मा गृधः कस्य स्वित् धनम् ( किसी का धन, अन्याय से ) मत लो।

( ८ ) अदीनाः स्याम शरदः शतात् ( सौ वर्ष तक दीनता रहित होकर जीवें )

( ९ ) भूमा वै तत्सुखम् ( सुख ईश्वर में है )

( १० ) अत्याचार सहना पाप है।

( ११ ) अत्याचार सहने से अत्याचार करने वाले पैदा होते हैं।

(१२) अत्याचार करने वाले की अपेक्षा अत्याचार का सहने वाला अधिक पापी होता है।

(१३) विद्या धर्मेण शोभते (विद्या की धर्म से शोभा होती है)

(१४) ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत (ब्रह्मचर्य और तप से विद्वान् मृत्यु को जीत लेता है)

(१५) आत्म साहाय्यं हि उत्तमम् (अपनी सहायता आप करना उत्तम है)

(१६) सुहृद् आपत्काले हि संलक्ष्यते (आपत्काल में मित्र की जांच होती है)

(१७) विना पुरुषकारेण दैवं न सिध्यति (पुरुषार्थ के विना प्रारब्ध नहीं बनता)

(१८) कटु वचन का घाव बड़ा गहरा होता है।

(१९) सर्वेषामेवदानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। (सब दानों में विद्यादान श्रेष्ठ है)

(२०) विद्या देने से बढ़ती है।

( २१ ) विद्या ददाति विनयम् (विद्या से नम्रता आती है )

( २२ ) आलस्य को त्याग दो ।

( २३ ) जो चाहे अधिक रस सीख ईख से लेय।
जो तोसों अवरस करै ताहि अधिक रस देय ॥

( २४ ) कामातुराणां भयं न लज्जा । ( कामी पुरुष निर्लज्ज होता है )

( २५ ) वरं मृत्युर्न पुनरपमानः । ( अपमान सहने से मरना अच्छा है )

( २६ ) आपदर्थे धनं रक्षेत् । ( मुसीबत के वक्त के लिये धन रखना चाहिये ।

( २७ ) न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ( धीर पुरुष न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होते )

( २८ ) तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ( मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो )

( २९ ) जहां चाह है वहां राह है ।

( ३० ) उतावला सो बावला ।

( ३१ ) आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः (विद्वान् वही है जो अपने सदृश सबको देखता है)

( ३२ ) नहि सत्यात्परो धर्मः। (सत्य से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है )

( ३३ ) ओ३म् क्रतो स्मर। ( हे जीव ओ३म् का स्मरण कर )

( ३४ ) न्यायकारी निर्बल का भी समर्थन करो।

( ३५ ) अन्यायकारी बलवान् के भी नाश करने का यत्न करे।

( ३६ ) मनः सत्येन शुध्यति। ( सच बोलने से मन शुद्ध होता है )

( ३७ ) असतो मा सद्गमय ( ईश्वर मैं असत् को त्याग कर सत् ग्रहण करूं )

( ३८ ) तमसो मा ज्योतिर्गमय ( अंधकार से बचकर प्रकाश की ओर चलूं )

( ३९ ) मृत्योर्माऽमृतङ्गमय। ( मृत्यु से अमृत की ओर चलूं )

( ४० ) प्राण जायँ पर वचन न जाई ।

( ४१ ) देश की उन्नति के लिये अपनी सभ्यता को रक्खो ।

( ४२ ) मन के हारे हार है ।

( ४३ ) मन के जीते जीत ।

( ४४ ) धियो यो नः प्रचोदयात् ( ईश्वर बुद्धि को प्रेरित करे )

( ४५ ) बुद्धिर्यस्य बलं तस्य ( बुद्धि से बल प्राप्त होता है )

( ४६ ) विनाशकाले विपरीतबुद्धिः । ( मुसीबत आने पर बुद्धि खराब हो जाती है )

( ४७ ) जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ( मातृभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है )

( ४८ ) तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ( तेजस्वी ईश्वर मुझे भी तेज देवे )

( ४९ ) बलमसि बलं मयि धेहि ( बल वाला ईश्वर मुझे भी बल देवे )

( ५० ) ओजोस्योऽजो मयि धेहि ( शक्तिमान् ईश्वर मुझे भी शक्ति देवे )

( ५१ ) मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ( दुष्टों के दमन करने वाले प्रभु मुझे भी ऐसा ही बनावे )

( ५२ ) सहोसि सहो मयि धेहि । ( सहनशील प्रभु मुझे भी सहनशीलता देवे )

( ५३ ) ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । ( ब्रह्मचर्य का पालन करके कन्या अपने सदृश युवा वर को प्राप्त करे )

( ५४ ) यतोधर्मस्ततो जयः । ( जहां धर्म वहीं विजय )

( ५५ ) धर्म एव हतो हन्ति । ( धर्म के विरुद्ध आचरण करने से मनुष्य का नाश होता है )

( ५६ ) धर्मो रक्षति रक्षतः ।(धर्मानुकूल आचरण करने से मनुष्य रक्षित रहता है )

( ५७ ) आचारः परमो धर्मः । ( सदाचार परमधर्म है )

( ५८ ) अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें।

( ५९ ) दया मनुष्य का दैवी भूषण है।

( ६० ) ईमान की कड़ी कमाई में बरकत होती है।

( ६१ ) मित्रस्य चक्षुषः समीक्षामहे। ( हम सब को मित्र की दृष्टि से देखें )

( ६२ ) ऋणकर्त्ता पिता शत्रुः ( कर्ज़ लेने वाला पिता दुश्मन होता है )

( ६३ ) मैं उधार से ऐसा ही डरता हूं जैसे लोग मौत से।

( ६४ ) फ़िजूल ख़र्च हमेशा कष्ट सहते हैं।

( ६५ ) सेवाधर्म बड़ा गहनधर्म है।

( ६६ ) स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

( ६७ ) साहसे श्रीः प्रतिवसति। ( हिम्मत से धन प्राप्त होता है )

( ६८ ) आयाधिकं व्ययं मा कुरु ( आमदनी से खर्च ज्यादा मत करो।

( ६९ ) बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ( भूखा कौनसा पाप नहीं करता )

( ७० ) चरित्र का बीज बोकर उद्देश्य की फ़सल काट लो।

[ ४७ ]

## कुछेक चुने हुए भजन

( १ )

पिताजी तुम पतित उद्धारन हार

दीन शरण कंगाल के स्वामी, दुःख के मोचनहार ॥१॥

इस जग मायाजाल भ्रमर में, सूझे सार असार ॥२॥

सत्य ज्ञान बिन दीखे न कुछ भी, करे असत्य आचार ॥३॥

पाप-प्रवाह भयंकर जल में, डूबत हैं मझधार ॥४॥

तुम्हरी दया बिन को समरथ है, करे दीन को पार ॥५॥

किस तरह ज़मीं चलती है सूरज के सहारे।
देखे कोई आलम में चमत्कार तुम्हारा॥
फूलों की तरह खिलते हैं दोनों में सितारे।
आकाश बना गुलशने बेख़ार तुम्हारा॥
बुद्धि की पहुँच से भी परे हद तुम्हारी।
हाँ तर्क की सीमा से परे पार तुम्हारा॥
अज्ञेय हो तुम, है यही आख़िर को एथीइज़्म।
इनकार भी आखिर को है इक़रार तुम्हारा॥

( ५ )

रहता है तापो तेज तपो बल के हाथ में।
जिस तरह चांदनी मेह अकमल के हाथ में॥
मिलना न मिलना उनका तो है कल के हाथ में।
पर दुःख है वह कल नहीं त्रलक के हाथ में॥
किसके तलाश की यह लगन है लगी हुई।
बिजली की लालटेन है बादल के हाथ में॥
घेरा है लोभ, मोह ने इस तरह जीव को।
जैसे कोई शरीफ़ हो अरजल के हाथ में॥

स्रवन वचन न सुनत काहू के, बल गये सब इन्द्रियन तें।
टूटे दसन वचन नहिं आवत, सोभा गई मुखन तें॥
ममता तू न गई०

कफ़, पित्त, वात कण्ठ पर बैठे सुनहिं बुलावन करतें।
भाई बन्धु सब परम प्यारे नाहिं निकारत घरतें॥
ममता तू न गई०

जैसे ससि-मण्डल बिच स्याही छूटें न कोटि जतन तें।
तुलसीदास बलि जाऊँ चरननतें लोभ पराये धन तें॥
ममता तू न गई०

(४)

जलवा कोई देखे अगर इकबार तुम्हारा।
हो जाय हमेशा को ख़रीदार तुम्हारा॥
क्यों उसका कोई तार हो बेतार जो कोई।
चिन्तन किया करता है लगातार तुम्हारा॥
लयलीन हुआ तुम में मिटा कर जो दुई को।
तुम यार उसी के हो वही यार तुम्हारा॥

किस तरह ज़मीं चलती है सूरज के सहारे ।
देखे कोई आलम में चमत्कार तुम्हारा ॥
फूलों की तरह खिलते हैं दोनों में सितारे ।
आकाश बना गुलशने बेखार तुम्हारा ॥
बुद्धि की पहुँच से भी परे हद्द तुम्हारी ।
हाँ तर्क की सीमा से परे पार तुम्हारा ॥
अज्ञेय हो तुम, है यही आखिर को एंथीइज़्म ।
इनकार भी आखिर को है इक़रार तुम्हारा ॥

( ५ )

रहता है तापो तेज तपो बल के हाथ में ।
जिस तरह चांदनी मेह अकमल के हाथ में ॥
मिलना न मिलना उनका तो है कल के हाथ में ।
पर दुःख है वह कल नहीं वलक के हाथ में ॥
किसके तलाश की यह लगन है लगी हुई ।
बिजली की लालटेन है बादल के हाथ में ॥
घेरा है लोभ, मोह ने इस तरह जीव को ।
जैसे कोई ग़रीब़ हो अरजल के हाथ में ॥

निर्लेप आत्मा तमोगुण से हुआ मलीन ।
हीरा सियाह हो गया काजल के हाथ में ॥
अभ्यास करना पड़ता है अष्टांग योग का ।
आता है मोक्ष-मार्ग बहुत चलके हाथ में ॥

(६)

अन्त समय में हे जगदीश्वर,
तेरा ही सुमरण तेरा ही ध्यान हो ।
काबू में होवे इन्द्रिय अपने,
वश में प्राण और अपान हो ॥ अन्त०
ख़ाली हो चित्त वासनाओं से,
अपने दुःख का न इसमें नामो निशान हो ।
श्रद्धा से भरपूर है मन होवे अपना,
भक्ति की हृदय में उत्कृष्ट स्थान हो ॥ अन्त०
सत ही पै निर्भर हों काम अपने,
सत ही का अभ्यास सत ही की आन हो ।
जीते हों सत पर मरते हों सत पर,
सत ही का गौरव सत ही का मान हो ॥ अन्त०

भूलें न यम को पालें नियम को,
जीवन में अपने तप ही प्रधान हो।
लवलीन हों प्रेम में तेरे ऐसे,
सुख की न सुध हो दुःख का न भान हो॥ अन्त०
अन्त समय में हे जगदीश्वर,
तेरा ही सुमरण तेरा ही ध्यान हो।

(७)

चन्द्र-मंडल में कोई देखले आभा तेरी।
तेज सूरज का नहीं यह भी है छाया तेरी॥१॥
तेरी महिमा को प्रकट करती है रचना तेरी।
देखले आके जगत् में कोई महिमा तेरी॥२॥
होंठ वे होंठ रहें जिन पे प्रशंसा तेरी।
मन वह मन है कि भरी जिसमें हो श्रद्धा तेरी॥३॥
तेरी तक़बीर की देती है गवाही दुनियाँ।
तेरी हस्ती की शहादत में है रचना तेरी॥४॥
ज़िक्र सौसन की ज़ुबां पर है तेरी रहमत का।
सर्व इक पांव से करता है तपस्या तेरी॥५॥

गोशे नाज़ुक में गुलेतर के छिपा भेद तेरा।
चश्मे नरगिस में निहां सूरते ज़ेबा तेरी ॥ ६ ॥
हर तरफ़ खोज में फिरती है तेरे बादे सबा।
बुलबुलें बाग़ में करती हैं तमन्ना तेरी ॥ ७ ॥
कामना कोई नहीं जिसकी हो इच्छा बाक़ी।
दिल में इक तू है और इक मिलने की आशा तेरी ॥८॥
इक दृष्टि हो इधर भी कि इसी फल के लिये।
जप रहा हूँ मैं बहुत देर से माला तेरी ॥ ९ ॥

( ८ )

मैं उनके दरस की प्यासी ॥ टेक ॥

जिनका ऋषि मुनि ध्यान धरें नित,
योगी योगाभ्यासी।
जिनको कहते अमर अनोखी।
आश्रय जिनके सदा त्रिलोकी।
जन्म मरण से रहित सदा शिव।
काल मुक्त अविनाशी ॥ मैं उनके० ॥

आविष्कर्ता अमर वेद का।
लेश न जिसमें भेद छेद का॥
अचल अमृत अलौकिक अनुपम।
परिभू घट घट वासी॥ मैं उनके०॥
अतुल राज्य है जिसका जग पर।
सकल सृष्टि है जिसके अन्तर॥
अमीचन्द जिससे होते हैं।
रवि राशि अग्नि प्रकाशी॥ मैं उनके०॥

( ६ )

मन मतवारा इन्द्रिय दश में।
इन्द्रिय हैं विषयों के वश में॥
कान मुग्ध रस में शब्दों के।
नेत्र रूप के जकड़े रस में॥
बंधा गन्ध से है घ्राणेन्द्रिय।
त्वचा फंसी स्पर्श सरस में॥
भांति भांति के भक्ष्य भोज कर।
रसना उलझ रही षटरस में॥

इस बन्धन से छुटकारा हो।

प्रभु करो मम-चित्त निज वश में॥

( १० )

मन पछितैहैं अवसर बीते।

दुर्लभ देह पाइ प्रभुपद भज कर्मवचन असहीते॥

सहस बाहु दस वदन आदि

नृप बचे न काल बली ते॥

हम हम करि धन धाम संवारे

अन्त चले उठ रीते॥

सुत वनितादि जानि स्वारथ रत

न करूँ नेह सब हीते॥

अन्तहु तोहि तजेंगे पामर

तू न तजै अब हीते॥

अब नाथ ही अनुराग जागु

जड़ त्यागु दुरासा जीते॥

बुझ न काम अगिनि तुलसी

कहुँ विषयभोग बहु पीते॥

[ ४८ ]

# आर्यसमाजों के सत्संग के नियम।

## श्रीसच्चिदानन्द जन्मशताब्दी सभा द्वारा नियम।

१—यह सत्संग प्रातःकाल रविवार को हुआ करे।

२—पहले सब मिल कर संध्या और अन्य वेदमन्त्र उच्च स्वरसे मिलकर पढ़ें।

३—फिर हवन यज्ञ हो।

४—फिर ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना उपासना के भजन हों।

५—तत्पश्चात् वेद तथा अन्य आर्य्यग्रन्थों का पाठ हुआ करे।

६—पुनः उपदेश हो।

७—भजन तथा ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त के इन ४ मन्त्रों का पाठ हो।

सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥

ऋ० १०।१९१।१॥

हे ( वृषन् ) बलवान् और ( अर्य ) श्रेष्ठ ( अग्ने ) तेजस्वी ईश्वर ! तुम ( विश्वानि ) सब पदार्थों को ( इत् ) निश्चय से ( सं सं आ-युवसे ) एकत्रित करके संमिलित करते हो और ( इलः पदे ) भूमि अथवा वाणी के स्थान में ( सं—इध्यसे ) उत्तम प्रकार से प्रकाशित हो । इसलिये ( सः ) वह तुम ( नः ) हम सब के लिये ( वसूनि ) सब प्रकार के निवास साधक धन ( आभर ) प्राप्त कराओ ।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ ऋ० १० । १९१ । २ ॥

हे भक्तो ! तुम सब ( संगच्छध्वं ) एक होकर प्रगति करो । ( वः मनांसि ) तुम सब के मन ( सं जानतां ) उत्तम संस्कारों से युक्त हों । तथा ( पूर्वे ) पूर्वकालीन ( सं जानाना देवाः ) उत्तम ज्ञानी और व्यवहार-चतुर लोग ( यथा ) जिस प्रकार ( भागं ) अपने कर्तव्य का भाग ( उप आसते ) करते आये हैं

इसी प्रकार तुम भी अपना कर्तव्य करते जाओ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

ऋ० १० । १९१ । ३ ॥

तुम सबका (मन्त्रः) विचार (समानः) एक हो। (समितिः) तुम्हारी सभा (समानी) सबकी एक जैसी हो। (मनः समानं) तुम सब का मन एक विचार से युक्त हो। (एषां चित्तं सह) इन सब का चित्त भी सब के साथ ही हो। (वः) तुम सब को (समानं मन्त्रं) एक ही विचार से (अभि मंत्रये) युक्त करता हूं और (वः) तुम सब को (समानेन हविषा) एक प्रकार के अन्न और उपभोग (जुहोमि) देता हूं।

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

ऋ० १० । १९१ । ४ ॥

( वः आकूतिः ) तुम सब का ध्येय समान ही हो। ( वः हृदयानि ) तुम सब के हृदय समान हों। ( वः मनः ) तुम सब का मन ( समानं अस्तु ) समान हो। ( यथा ) जिससे ( वः ) तुम सब ( सह सु आसति ) समान होंगे।

८—आवश्यक सूचना इत्यादि देकर शान्तिपाठ से सभा समाप्त हो।

( १ )

धर्म वैदिक है हमारा, आर्य प्यारा नाम है।
वेद के अनुसार सारा, जग बनाना काम है ॥ १ ॥
ब्रह्म की पूजा करें हम, भेद दूजा दूर कर।
सच्चिदानन्दादि मङ्गल, मूल अज, अभिराम है ॥ २ ॥
वेद का पढ़ना पढ़ाना, परमपावन धर्म है।
सत्यविद्या का वही घर, विश्वविद्या धाम है ॥ ३ ॥
सत्य स्वीकृति, अनृत त्यागने में, सदा उद्यत रहें।
धर्मनीति विचार से हो, सर्वदा सब काम है ॥ ४ ॥

विश्व का उपकार करना, मुख्य ये उद्देश्य है।
सर्व सामाजिक समुन्नति, में कभी न विराम है ॥५॥
विविध मत फैले हुए, करके सभी का सामना।
सत्य पर सब को चलावें, धर्म का संग्राम है ॥ ६ ॥
वेदहित जीवन हमारा, वेदहित मरना भला।
वेद-शाला शून्य कोई भी न होवे ग्राम है ॥ ७ ॥
वेद-सूर्य प्रकाश में, ऋषि के प्रदर्शित पाथ में।
प्राण भी जावें चले, पर धर्म में आराम है ॥ ८ ॥

( २ )

ओ३म् जय जगदीश हरे।

पिता जय जगदीश हरे। भक्त जनन के सङ्कट,
क्षण में दूर करे। ओ३म् जय जगदीश हरे ॥ टेक ॥
जो ध्यावे फल पावे, दुख विनशे मनका,
पिता दुख विनशे मनका। सुख सम्पत्ति घर आवे,
कष्ट मिटे तन का। ओ३म् जय जगदीश हरे ॥ १ ॥
मात पिता तुम मेरे शरण गहूं किस की।

पिता शरण गहूं किस की, तुम बिन और न कोई,
आश करूं किस की। ओ३म् जय० ॥ २ ॥
तुम पूरण परमातम, तुम अन्तर्यामी,
पिता तुम अन्तर्यामी, पारब्रह्म परमेश्वर,
तुम सब के स्वामी। ओ३म् जय० ॥ ३ ॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्त्ता,
पिता तुम पालन कर्त्ता। मैं मूरख अज्ञानी,
कृपा करो भर्त्ता। ओ३म् जय० ॥ ४ ॥
तुम हो एक अगोचर सब के प्राणपती,
पिता सब के प्राणपती। किस विधि मिलूं दयामय,
तुम को मैं कुमती। ओ३म् जय० ॥ ५ ॥
दीनबन्धु दुख हर्त्ता, तुम रक्षक मेरे,
पिता तुम रक्षक मेरे। करुणा-हस्त बढ़ाओ,
शरण पड़ा तेरे। ओ३म् जय० ॥ ६ ॥
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा,
पिता पाप हरो देवा। श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ,
सज्जन की सेवा। ओ३म् जय जगदीश हरे ॥ ७ ॥

[ ४६ ]

## प्रवेश-पद्धति

श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी सभा ने जो प्रवेश ( शुद्धि ) पद्धति विद्वानों से निर्माण कराई है, उसे नीचे लिखते हैं। उसी के अनुसार प्रवेश ( शुद्धि ) संस्कार करना उचित है। जिस जन्म के वैदिकधर्म को न माननेवाले पुरुष व स्त्री को आर्यसमाज यानी आर्यजाति में प्रवेश करना हो, उसको अपने २ देश में प्रचलित रीति से हजामत कराके ( यदि स्त्री हो तो क्षौर न करावें ) खूब भलीभांति स्नान कराके ( स्त्री हो तो सिर सहित स्नान करावें ) बिलकुल स्वच्छ वस्त्र पहना के, वेदि ( यज्ञ करने के लिये यजमानादि के बैठने का स्थान ) पर के बीच में उससे नीचे के मन्त्रों को पाठ कराया जाय। और अर्थ भी सुना दिया जाय। ये ही मन्त्र बोल कर आचार्य उसके ऊपर कुछ जल का छींटा भी देदे। वे मन्त्र ये हैं:—

पुनंतु मा देवजनाः पुनंतु मनसो धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥
यजु० १६ । ३६ ॥

( देवजनाः ) हे सब विद्वान् और श्रेष्ठ पुरुषो ! आप ( मा ) मुझको ( पुनन्तु ) पवित्र कीजिये आप ( मनसा ) मन के साथ ( धियः ) बुद्धियों या कर्मों को भी अत्र ( पुनन्तु ) पवित्र ( विश्वा ) सब ( भूतानि ) प्राणी अर्थात् पुरुष स्त्री आपकी कृपा से मुझे ( पुनन्तु ) पवित्र करें, ( जातवेदः ) हे ज्ञानी आचार्य ! आप भी ( मा ) मुझे इन सब के सामने ( पुनीहि ) पवित्र कीजिये ।

पवित्रेण पुनीहि मा, शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२ ॥ रनु ॥ यजुः० १६ । ४० ॥

( देव ) हे शुभगुणयुक्त ( अग्ने ) हे ज्ञान के प्रकाशकारक आचार्य ! आप ( दीद्यत् ) देदीप्यमान होते हुए ( शुक्रेण ) शुद्ध ( पवित्रेण ) पवित्र कर्म से ( मा ) मुझे ( पुनीहि ) पवित्र करें । ( क्रतून्

अनु ) और मेरे यज्ञों को ध्यान में रख कर (क्रत्वा) यज्ञ-कर्म से मुझको पवित्र कीजिये ।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु माम् ॥ यजु० १९। ४१ ॥

( अग्ने ) ! हे ज्ञान से तेजस्वी आचार्य ! ( ते ) आप की ( अर्चिषि ) अग्नि की लपट के तुल्य चमकदार बुद्धि के ( अन्तरा ) अन्दर ( यत् ) जो (पवित्रं) शुद्ध ( ब्रह्म ) वेदज्ञान ( विततं ) फैला या भरा है ( तेन ) उससे ( मा ) मुझे ( पुनातु ) पवित्र कीजिये अर्थात् उसका उपदेश कीजिये, ताकि अपना आचरण वेदानुकूल कर सकूं ।

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु मा ॥ यजु० १९ । ४२ ॥

( पवमानः ) वेद का उपदेश करके पवित्र करने वाला ( विचर्षणिः ) किये तथा न किये हुए सब को जानने वाला है ( सः ) वह परमात्मा ( अद्य ) आज ( नः ) हमें या मुझे ( पवित्रेण ) हमेशा

पवित्र कर्म करने के उपदेश से (पुनातु) पवित्र करे। और (यः) जो (पोता) स्वभाव अर्थात् विना स्वार्थ वाले कारण से ही पवित्र करने वाला है (सः) वह परमात्मा (मा) मुझे पवित्र करे अर्थात् आज मैं सब के सामने परमात्मा से यह प्रतिज्ञा करता हूं कि कभी वेदविरुद्ध कार्य न करूंगा, जिससे कि अपवित्र होऊं।

इन मन्त्रों के पाठ के बाद वेदी में आसन पर बैठ कर आचार्य 'शन्नो देवी०' मन्त्र से उसे आचमन करावे और 'यज्ञोपवीत' पहनावे तथा 'गायत्री मन्त्र' का उच्चारण करावे, संक्षेप में अर्थ भी सुना देना उचित है। फिर यथाविधि प्रार्थनामंत्र, स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ और सामान्यप्रकरण के सम्पूर्ण हवन को समाप्त करके पूर्णाहुति "सर्वं वै पूर्णं॑ स्वाहा" से पहले नीचे के मंत्रों से आहुति देनी चाहिये।

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयं। अग्नि-र्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः॥

( देवः देवासः ) हे विद्वानो ! ( वयं ) हम ने ( यत् ) जो ( देवहेडनं ) विद्वानों का अपराध ( चकृमा ) किया है। ( अग्नि ) यह यज्ञ की भौतिक अग्नि या ज्ञानी आचार्य या प्रकाशरूप परमात्मा ( तस्मात् ) उस ( पापात् ) पाप से (मा) हमें या मुझे ( मुञ्चतु ) छुड़ावे और ( विश्वात् ) समस्त ( अंहसः ) पाप से छुड़ावे।

यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳसि चकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥२॥

( यदि ) अगर ( दिवा ) दिन में ( यदि ) अगर ( नक्तं ) रात में ( वयं ) हमने ( एनांसि ) पाप ( चकृम ) किये हैं तो ( वायुः ) भौतिक वायु और अपने ज्ञान से सर्वत्र पहुंच सकने वाला आचार्य और ईश्वर मुझे पाप से मुक्त करो।

यदि जाग्रद् यदि स्वपन् एनाꣳसि चकृमा वयम्। सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ ३ ॥

(यदि) (जाग्रत्) जागते हुए (यदि) (स्वपन्) सोते हुए (वयं एनांसि चकृम) हमने पापा चरण किये हैं तो (सूर्यः) भौतिक सूर्य, ज्ञान का प्रकाशक आचार्य और परमात्मा मुझे इस पापाचरण से दूर करो।

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्थे यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि, तस्यावयजनमसि ॥ ४ ॥

-यजु० २० । १७ ॥

(यत्) जो (ग्रामे) गांव में (यत्) (अरण्ये) जंगल में (यत्) (सभायां) सभा में परनिन्दा (यत् इन्द्रिये) परनारी दर्शनादि (यत् शूद्रे) शूद्र संबंधी (यत् अर्थे) जो स्वामी के प्रति (एनः) पाप (वयं) हम (चकृम) कर चुके हैं। (एकस्य) स्त्री पुरुष दोनों में से एक के भी (अधि धर्मणि) कर्तव्य के विघ्न करने में (तस्य) उस पाप के हे आचार्य! आप (अवयजनं) नाशक (असि) हो।

अगर कोई जन्म से वेदविरोधी न हो, किसी कारणवश पतित ( वेदविरोधी ईसाई, यवन आदि मत में प्रविष्ट ) हो गया हो और वह वैदिकधर्मियों में पुनः प्रविष्ट होना चाहे तो उससे नीचे के मन्त्र का पाठ भी कराया जाय। हमारी सम्मति में जन्म के पतित से भी इस मन्त्र का पाठ कराना अनुचित नहीं:—

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयं। यूयं नं तस्मान्मुञ्चत विश्वेदेवाः संजोपसः। अथर्व० ६। ११५। १॥

( विद्वांसः अविद्वांसः ) जान बूझ कर या बिना जाने मूर्खता से ( वयं ) हमने ( यत् यत् ) जो जो ( एनांसि ) पाप ( चकृम ) किये हैं। ( यूयं ) आप ( विश्वेदेवाः ) सब विद्वान् पुरुष ( सजोपसः ) प्रीति के साथ ( तस्मात् ) उस पाप समुदाय से ( नः ) हमको ( मुञ्चत ) पृथक् कर दो।

इसके बाद अर्थ सहित गायत्री का पाठ भी उससे कराना चाहिये। फिर नीचे के मन्त्र से एक आहुति देकर पूर्णाहुति ( ओं सर्वं वै पूर्णं९ स्वाहा ) करा दी जाय।

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥ यजु० १।५॥

( व्रतपते, अग्ने ) व्रतों के पालक हे विद्वद्गण या ईश्वर! मैं ( व्रतम् ) प्रण या व्रत का (चरिष्यामि) पालन करूंगा ( तत् ) मैं उस को करने में ( शकेयं ) समर्थ होऊं ( मे ) मेरा ( तत् ) वह ( राध्यतां ) पूरा हो ( अहं ) मैं ( अनृतात् ) झूठ से ( इदं सत्यं ) इस सत्य को ( उपैमि ) प्राप्त होता हूं।

## परम-पावन प्रभु का स्मरण और शिक्षाएं

### ( १ )

तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया,
वो वाणी से जावेगा क्योंकर बताया।
नहीं है यह वह रस जिसे रसना चाखे,
नहीं रूप उसका कभी दृष्टि आया।
नहीं है यह वह गन्ध जो घ्राण सूंघे,
त्वचा से न जावे वह छूआ छुआया।
न संख्या में आना सम्भव है उसका,
दिशा काल में भी नहीं वह समाया।
न तुझसा है दाता कोई और दानी,
कि इतना बड़ा दान जिसने दिलाया।
चरित्रोन्नति में तुम्हारी दया से,
मेरी ज़िन्दगी ने अजब पलटा खाया।
वह सत्र है वह चित है वह आनन्द मय है,
मुझे मेरे अनुभव ने निश्चय कराया।

अमीचन्द गूंगे की रसना के सदृश,

यह कैसे बतावे कि क्या स्वाद आया ।

( २ )

मत हीरा जन्म गंवाओ, कुछ करलो नेक कमाई

खप खप के जन माया जोड़ी,

बन गये लखपति और करोड़ी

चलती बार यहीं सब छोड़ी, क्यों तुम जान खपाओ ॥

नहीं साथ चले इक पाई ॥ १ ॥

परम गुरु वेदों को मानो, इष्ट देव ईश्वर को जानो ।

मत गफलत का तम्बू तानो, धन धर्म्म कमाओ ॥

होगा वही अन्त सहाई ॥ २ ॥

इन्द्रियों को वश में राखो, प्रेम पिया का अमृत चाखो ।

सत्य कहो, पर कटु न भाखो, अपना जगत बनाओ ॥

तुम लेलो मुफ्त भलाई ॥ ३ ॥

शम, दम, धीरज मन में धारो, पाप कर्म से रहो न्यारो ।

गायत्री का अर्थ विचारो, गुण ईश्वर के गाओ ॥

चाहत हो यदि भलाई ॥ ४ ॥

( ३ )

अय विश्वनाथ मन का चंचलपना मिटादे ।
कुटिया में शान्ति के आनन्द से बिठादे ॥

अखलाक़ मेरा मुझ से अय नाथ दूर करदे ।
अज्ञानता से कारज बिगड़े सभी बनादे ॥

ऐसा अनुग्रह कर दे, खुल जायें ज्ञान-चक्षु ।
उन चक्षुओं से अपने प्रकाश को दिखादे ॥

दुनियां के जो विषय हैं उनसे है जंग मेरी ।
अपनी दयालुता से मुझको फतह दिलादे ॥

खुदमतलबी छुड़ादे सेवा में करदे तत्पर ।
उपकार पर पराय मेरी कमर बंधादे ॥

भटका हुआ मुसाफिर बहका हुआ है फिरता ।
मंज़िल पै जल्द पहुंचे वह रास्ता बतादे ॥

केवल तेरी लगन में बेसुध रहूँ हमेशा ।
प्रीति का अपने प्याला ऐसा मुझे पिलादे ॥

( ४ )

भजले ओंकार रे मन मूर्ख अनारी ।
चार दिनन के जीवन खातिर कैसा जाल पसारी ।
कोई न जीवत संग तुम्हारे मात पिता सुत नारी ॥
पाप कपट से संचित धन कर मूर्ख मौत बिसारी ।
ब्रह्मानन्द जन्म यह दुर्लभ देत वृथा किम डारी ॥

( ५ )

मगन ईश्वर की भक्ती में अरे मन क्यों नहीं होता ।
पड़ा आलस्य में मूरख रहेगा कब तलक सोता ॥
जो इच्छा है तेरे कट जायँ सारे मैल पापों के ।
प्रभु के प्रेम जल में क्यों नहीं अपने को है धोता ॥
विषय और भोग में फंसकर न कर बरबाद जीवन को ।
दमन कर चित्त की वृत्ति लगा ले योग में गोता ॥
नहीं संसार की वस्तु कोई भी सुख की हेतू है ।
वृथा इनके लिये फिर क्यों समय अनमोल तू खोता ॥
धर्म ही एक ऐसा है जो होगा अन्त को साथी ।
न जोरू काम आवेगी न भाई पुत्र और पोता ॥

भटकता जा बजा बाहक़ तू क्यों सुख के लिये सालिग।
तेरे हृदय के तो भीतर है वह आनन्द का सोता ॥

( ६ )

शरण प्रभु की आओ रे ! ये ही समय है प्यारे।
आवो हरि गुण गावो रे ! ये ही समय है प्यारे ॥
उदय हुआ ओ३म् नाम का भानु,
आवो दर्शन पावो रे ॥ १ ॥
अमृत झरना झरता इससे,
पीके अमर हो जाओ रे ॥ २ ॥
ईर्ष्या, द्वेष, कपट को त्यागो,
सत में चित्त लगाओ रे ॥ ३ ॥
हरि की भक्ति बिना नहीं मुक्ति,
दृढ़ विश्वास जमाओ रे ॥ ४ ॥
करलो नाम हरी का सुमिरन,
अन्त को ना पछताओ रे ॥ ५ ॥
छोटे बड़े सब मिल के खुशी से,
गुण ईश्वर के गाओ रे ॥ ६ ॥

( ७ )

जो हरि गीत प्रीति सङ्ग गाये।

तिसके शोक निकट नहीं आये ॥

अमृत वन तेरो चरित्र मनोहर।

मन की तपत बुझाये ॥ १ ॥

उधर पतित अधम अति पापी।

जो तव शरण में आये ॥

हे प्रभु हम अति दुखिया होकर।

तव शरणागत आये ॥ २ ॥

परम सुखदाता ज्ञान प्रदाता।

तैं वह नाम धराये ॥

मांग रहे द्वार पर याचक।

अब क्यों देर लगाये ॥ ३ ॥

विषयन से उपराम रहूं।

यों भक्ति हृदय में भाये ॥

पढ़ सुन वेद वेदाङ्ग अमीचन्द।

संशय भ्रम मिटाये ॥ ४ ॥

( ८ )

हुआ ध्यान में ईश्वर के जो मगन,
उसे कोई क्लेश लगा न रहा।
जब ज्ञान की गंगा में न्हाया,
तो मन में मैल जरा न रहा॥ १॥

परमात्मा को जब आत्मा में,
लिया देख ज्ञान की आंखों से।
प्रकाश हुआ मन में उसके,
कोई उससे भेद छिपा न रहा॥२॥

पुरुषार्थ ही इस दुनियां में,
हर कामना पूरी करता है।
मन चाहा सुख उसनें पाया,
जो आलसी बन के पड़ा न रहा॥ ३॥

दुःखदायी हैं सब शत्रु हैं,
यह विषय हैं जितने दुनियां के।
वही पार हुआ भवसागर से,
जो जाल में इनके फंसा न रहा॥४॥

यह वेदविरुद्ध जब मत फैला,
पत्थर की पूजा जारी हुई ।
जब वेद की विद्या लोप हुई,
तो ज्ञान का पांव जमा न रहा ॥५॥
यहां बड़े बड़े महाराज हुये,
बलवान् हुये विद्वान् हुये ।
पर मौत के पंजे से केवल,
संसार में कोई बचा न रहा ॥ ६ ॥

( ६ )

पावें किस प्रकार हम जगदीश दर्शन आपका ।
कौनसी ज्योति से हो प्रकाश भगवन् आपका ॥१॥
चांद सूरज आपको प्रकाश कर सकते नहीं ।
उनके है प्रकाश का प्रकाश कारण आपका ॥ २ ॥
खींच लेना है यह सारे विश्व की तसवीर पर ।
पर नहीं सकता कदापि मन भी चिन्तन आपका ॥३॥
आप इनकी तो पहुंच से ही परे हैं हे प्रभु ।
हो सके क्यों कर भला वाणी से वर्णन आपका ॥४॥

जड़ जगत् तक पहुँच कर रह गईं सब इन्द्रियां।
रूप का क्या अनुभव करें यह शुद्ध चेतन आपका ॥५॥
हैं हमारी शक्तियां इस काम में वे अर्थ सब।
है अनुग्रह, आपके दर्शन का साधन, आपका ॥ ६ ॥
कर्म्मबल से हीन हूँ मैं, तप नहीं भक्ती नहीं।
किन्तु शरणागत हुआ है मेरा तन मन आपका ॥७॥
कीजिये स्वीकार मुझको दीजिये दर्शन दिखा।
आत्मा में हो मेरी अब प्रेम पूरण आपका ॥ ८ ॥
शुद्ध होकर मेरा हृदय आपका मन्दिर बने।
जिससे हो प्रकाश इसमें दुःखभंजन आपका ॥ ९ ॥

( १० )

टेक—प्रीतम तू ही प्रेम का धाम

जग से प्रीत करी बहुतेरी, मिला न कुछ विश्राम ॥
प्रीतम० ॥ १ ॥

तेरे प्रेम अमृत से प्यारे, जीता विश्व तमाम।
स्वच्छ समीर मेघ इत्यादिक, सभी प्रेम के काम ॥
प्रीतम० ॥ २ ॥

एक बार भी जिसने पिया, तेरे प्रेम का जाम।
जीवन भर प्रेम प्रेम का इसमें हुआ मुकाम॥
प्रीतम० ॥ ३॥

प्रेम स्वरूप जोगेश्वर कहके ऋषि मुनि करें प्रणाम।
गावें गीत प्रेम मय होकर लेले तेरा नाम॥
प्रीतम० ॥ ४॥

डूबे तेरे प्रेमसिन्धु में गिरधर स्वामी राम।
गौरांगी, मीरा, तुलसी, सूर, तुकाजी राम॥
प्रीतम० ॥ ५॥

है निमग्न रस सागर में रसिक शिरोमणि श्याम।
ले चल सब नयरन्त मुझे भी जहां प्रभु का धाम॥
प्रीतम० ॥ ६॥

( ११ )

हे जगत पिता! हे जगत प्रभु।
मुझे अपना प्रेम पियार दे।
तेरी भक्ति में लगे मन मेरा,
विषय कामना को विसार दे॥

मुझे ज्ञान और विवेक दे,
मुझे वेद वाणी में प्रेम दे ।
मुझे मेधा दे, मुझे ज्ञान दे,
मुझे बुद्धि और विचार दे ॥
मुझे ओज दे, मुझे तेज दे,
मुझे स्वास्थ्य और अरोगिता ।
मुझे पूर्ण आयु, अदीनता,
मुझे शोभा, लोक संस्कार दे ॥
मुझे धर्म कर्म से प्रेम हो,
तजूँ सत्य को न कभी भी मैं ।
कोई चाहे सुख मुझे दे घना,
कोई चाहे कष्ट हजार दे ॥
कभी दीन हूँ न जगत में मैं,
मुझे दीजे सच्ची स्वतन्त्रता ।
मेरे फन्द पाप के काट दे,
मुझे दुःख से पार उतार दे ॥

रहूँ मैं अभय न हो मुझको भय,
किसी मित्र और अमित्र से ।
तेरी रक्षिता का हो बल मुझे,
मेरे भीरु मन को तू तार दे ॥
मुझे दुश्चरित से परे हटा,
सुचरित का भागी बना मुझे ।
मेरे मन को वाणी को शुद्ध कर,
मेरे सारे कर्म्म सुधार दे ॥
मेरा हृदय क्षोभ से हो रहित,
मिले नित्य शान्ति हर जगह ।
मेरे शत्रुगण में भी हो सुमति,
कुमति को उनकी निवार दे ॥
तेरी आज्ञा में रहूँ सदा,
तेरे सामने रहे सर झुका ।
कभी हो न मुझ में अधीरता,
मैं पतित हूं तूही उभार दे ॥

( १२ )

हमने ली है फ़क़त इक तुम्हारी शरण,
हे पिता और कोई सहारा नहीं ।
पतित पावन अब आसरा दो हमें,
आसरा और कोई हमारा नहीं ॥
न बुद्धि, न भक्ति, न विद्या का बल,
हृदय पै चढ़ा पाप कर्मों का मल ।
तुम्हारी दया को फ़क़त आसरा,
तुमने किस किस को स्वामी उभारा नहीं ॥
हुये मोह माया के वश में यहां,
फंसे लोभ क्रोध और अहङ्कार में ।
पड़ी नैया अपनी है मंझधार में,
नज़र आता कोई किनारा नहीं ॥
अविद्या है यह कैसी छाई हुई,
सभी कर्म गुण की सफ़ाई हुई ।
आस तुम से है ईश्वर लगाई हुई,
यही द्वार है और द्वारा नहीं ॥

यहां वेदपाठी न ज्ञानी रहे,
न योद्धा रहें और न दानी रहें।
बचा लो पिता हे पिता लो बचा,
और दर पै तो जाना गवारा नहीं॥
यह विनती है मेरी पिता मान लो,
अनाथों के दुःखों को पहचान लो।
मुर्दों सब के अज्ञान को जान लो।
हाथ आगे किसी के पसारा नहीं॥

( ९२ )

पीकर तेरा प्रेम पियाला होजाऊँ मतवाला॥

प्रेम की बाती प्रेम का दीपक प्रेम की होवे ज्वाला।
मन-मन्दिर में जगमग करके हो जावे उजियाला॥
मेरे घर के अन्दर बहता होवे प्रेम का नाला।
जब जब प्यास लगे उसमें से भरकर पीलूँ प्याला॥
घो दे प्रेम-वारि से अब तू मन मेरा मटियाला।
तेरे प्रेम के रङ्ग में रङ्ग कर हो जाऊँ रङ्गियाला॥

प्रेम-अश्रु से सिञ्चित प्रेम का बाग लगे हरियाला।
प्रेम प्रसून लगे हों उसमें उनकी गूँथू माला॥

(१४)

रङ्ग वाले, देर क्या है मेरा चोला रंग दे।
और सारे रंग धोकर रंग अपना रंग दे॥
कितने ही रंगों से मैंने आज तक रंगा इसे।
पर वो सारे फीके निकले तू ही गाढ़ा रङ्ग दे॥
तूने रंगी यह ज़मी अरु आसमां जिस रंग से।
उस में मेरा चोला भी ऐ, रंगवाले रंग दे॥
जिस तरफ़ मैं देखता हूं रंग तेरा दीखता।
मैं ही बस बेरङ्ग हूं तू मुझ को भी अब रंग दे॥
मैं तो जानूंगा तभी तेरी ये रंग अन्दाज़ियाँ।
जितना धोऊं उतना चमके जब तू ऐसा रंग दे॥

(१५)

भलाई कर चलो जग में तुम्हारा भी भला होगा।
किया जो काम नेको बद वह एक दिन बरमला होगा॥

सताते तुम हो दीनों को न खाते ख़ौफ़ मालिक का।
सितमगर भी कोई देखा जो फूला और फला होगा॥
समझ कर जान अपनी सी दुखाओ मत किसी का दिल।
जलावेगा तुम्हें बेशक जो खुद तुम से जला होगा॥
फ़रायज़ अपने को हरदम अदा करते रहो फ़ौरन।
मज़ा बलदेव विषयों का तुम्हें एक दिन बला होगा॥

( १६ )

यही है आरज़ू भगवन् मेरा जीवन यह आला हो।
परोपकारी, सदाचारी व लम्बी उमर वाला हो॥
सरलता, शीलता यकता हो भूषण मेरे जीवन के।
सचाई सादगी श्रद्धा के मन सांचे में ढाला हो॥
तजूं छल कूट चालाकी बनूं सत्संग अनुरागी।
गुनाहों और ख़ताओं से मेरा जीवन निराला हो॥
तेरी भक्ती में आ भगवन् लगादूं अपना मैं तनमन।
दिखाने के लिये हाथों में थैली हो, न माला हो॥
मेरा वेदोक्त हो जीवन, कहाऊं धर्म अनुरागी।
रहूं आज्ञा में वेदों की, न हुक्मे वेद टाला हो॥

तजूं सब खोटे भावों को तजूं दुर-वासनाओं को।
तेरे विज्ञान दीपक का मेरे मन में उजाला हो॥
सदाचारी रहूं हरदम बुराई दूर हो मन से।
क्रोध और काम ने मुझ पर न जादू कोई डाला हो॥
मुसीबत हो कि राहत हो रहूं हर हाल में साबर।
न घबराऊं न पछताऊं न कुछ फरयादो नाला हो॥
पिलादे मोक्ष की घुट्टी मरन जीवन से हो छुट्टी।
विनय अन्तिम यह अर्जुन की अगर मंजूरे वाला हो॥

( १७ )

काहे शोक करे नर मन में, वह तेरा रखवारा है रे ॥ टेक॥
गर्भवास से जब तू निकला, दूध स्तनों में डाला है रे।
बालकपन में पालन कीनो, माता मोह दुबारा है रे॥

काहे० ॥ १ ॥

अन्न रचा पुरुषों के कारण, पशुओं के हित चारा है रे।
पक्षी वन में पान फूल फल, सुख से करत अहारा है रे॥

काहे० ॥ २ ॥

जल में जलचर रहत निरंतर करते वहीं गुजारा है रे।
ब्रह्मानन्द फिकर सब तज के सुमरो सर्जन म्हारा है रे॥
काहे० ॥ ३ ॥

( १८ )

बात चलन दी करदे ऐत्थे रहना नाहिं । टेक ॥
खाय खुराकां पैहन पुशाकां जमदा बकरा पल हो ॥
ऐत्थे रहना० ॥ १ ॥
गंगा जावें गोदावरी न्हावें अजों न समझें खल हो॥
ऐत्थे रहना० ॥ २ ॥
उमर तेरी एवें जांदी घड़ी घड़ी पल पल हो ॥
ऐत्थे रहना० ॥ ३ ॥
कहे हुसैन फ़क़ीर सांई दा मय सांहिब दा कल हो ॥
ऐत्थे रहना० ॥ ४ ॥

( १९ )

हे दयामय आपका हमको सदा आधार हो।
आपके भक्तों से ही भरपूर यह परिवार हो ॥

सताते तुम हो दीनों को न मानें ख़ौफ़ मालिक का ।
सितमगर भी कोई देखा जो फूला और फला होगा ॥
समझ कर जान अपनी भी दुखाओ मत किसी का दिल ।
जलावेगा तुम्हें बेशक जो खुद तुम से जला होगा ॥
फ़रायज़ अपने को हरदम सदा करते रहो फ़ौरन ।
सज़ा बलदेव गिरघों का तुम्हें एक दिन चखा होगा ॥

( १६ )

यही है आरज़ू भगवन् मेरा जीवन यह आला हो ।
परउपकारी, सदाचारी व नम्री अमर वाला हो ॥
सरलता, शीलता एकता हो भूषण मेरे जीवन के ।
सचाई सादगी श्रद्धा के मन सांचे में ढाला हो ॥
तजूं छल कूट चालाकी बनूं सत्संग अनुरागी ।
गुनाहों और ख़ताओं से मेरा जीवन निराला हो ॥
तेरी भक्ती में ऐ भगवन् लगा दूं अपना मैं तनमन ।
दिखावे के लिये हाथों में थैली हो, न माला हो ॥
मेरा बेदोष हो जीवन, बनाऊं धर्म अनुरागी ।
रहूं आज्ञा में वेदों की, न इनसे पैर टला हो ॥

सुख के सभी हैं साथी, दुनियां के मित्र सारे।
तेरा ही नाम प्यारा दुःख दर्द से बचैया ॥
दुनियां में फंस के सुख को हासिल हुआ न कुछ फल।
तेरे बिना हमारा कोई नहीं सुनैया ॥
चारों तरफ़ से हम पर ग़म की घटा है छाई।
सुख का करो उजाला प्रकाश के करैया ॥
अच्छा बुरा है जैसा राजी में "राम" रहता।
चेरा है यह तुम्हारा, सुधलेओ सुध लिवैया ॥

(२१)

मात पिता के प्रेम जल से,
यह खेत मन का हरा हुआ।
तो अवश्य होगा कि एक दिन,
यह ही फूल फल से फला हुआ ॥
पर चाहिये कि उपासना में,
न होने पावे नगाफ़ली[१]।

[१] ग़फ़लत।

रहे ओ३म् शब्द के जाप का,
तेरे मन में तार बंधा हुआ ॥
ये उपासना का जो बाग़ है,
सुबह शाम इसकी तू सैर कर ।
ये करेगा कुलफत[2] दूर सब,
ये सरूर[3] से है भरा हुआ ॥
यहां रहती नित्य बहार है,
यहां से ख़िज़ां को फ़रार है ।
जो गुज़र हो इसमें ख़याल का,
रहे दिल का गुंचा[4] खिला हुआ ॥
यहां की फ़िज़ा[5] है वह दिलरुबा[6],
नहीं जिससे दिल हो कभी जुदा ।
यहां गुल अजब हैं खिले हुए,
यहां मोक्ष-फल है लगा हुआ ॥

---

( २ ) दुःख, ( ३ ) प्रसन्नता, ( ४ ) कली, ( ५ ) बहार, ( ६ ) मनोहारिणी ।

जो दग़ा फ़रेब से है अलग,
वही इसमें जाने का मुस्तहक़ ।
नहीं यह नसीब उसे हुवा,
जो विषय में होवे फंसा हुआ ॥
जो हो धर्मयुक्त पती सती,
वही पासके है यहां जगह ।
न सताय उसको कलेश फिर,
रहे सब दुःखों से बचा हुआ ॥
जिसे कोशिशों के तुफ़ैल[1] से,
जगह इस चमन में अता हुई ।
वही जीने मरने की क़ैद से,
बिना रोक टोक रिहा हुआ ॥
तेरी खुश नसीबी है कमला,
तेरा इस तरफ़ को जो मन चला ।
ज़रा जल्दी से क़दम उठा,
दरे बाग़ है यह खुला हुआ ॥

(१) बदौलत ।

## नित्य नियम से स्वाध्याय करने योग्य

# चारों वेद सरल भाषाभाष्य सहित

अति शीघ्र प्राप्त करें। अब न चूकें, यदि चूक गये तो फिर पुनः ऐसा अवसर हाथ न आवेगा।

### १ सामवेद सम्पूर्ण ( भाषाभाष्य )

सरल और सुबोध, जिसकी विद्वानों और योग्य सम्पादकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। मू० ४)

### २ अथर्ववेद ( भाषाभाष्य )

चार खण्डों में सम्पूर्ण। मूल्य प्रत्येक खण्ड ४) रु०, चारों खण्ड १६) रुपये।

### ३ यजुर्वेद ( भाषाभाष्य )

दो खण्डों में सम्पूर्ण। मूल्य प्रत्येक खण्ड ४)
दो खण्ड ८)

### ४ ऋग्वेद ( भाषाभाष्य )

लगभग ५ भागों में सम्पूर्ण। प्रथम खण्ड छप गया है। शेष खण्ड छप रहे हैं। प्रत्येक खण्ड का दाम ४)

## विशेष ज्ञातव्य

( १ ) वेदभाष्य के स्थायी ग्राहक बनने से वेदभाष्य का प्रत्येक खण्ड पौने दाम में अर्थात् ३) रु० में ही दिया जाता है।

( २ ) स्थायी ग्राहक होने के लिये १) रु० पेशगी कार्यालय में जमा कराना आवश्यक है।

( ३ ) स्थायी ग्राहकों को समस्त खण्ड लेने होंगे। स्थायी ग्राहक होने के लिये प्रवेश फार्म मंगाइये।

( ४ ) मार्गव्यय नियत मूल्य से अतिरिक्त देना होगा।

( ५ ) मण्डल से समस्त अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें भी प्राप्त होती हैं। इसके लिये आप 'मण्डल' का बड़ा सूचीपत्र मंगाइये।